धर्मायण
मूल्य : 45 रुपये
अंक 114
पौष, 2078 वि. सं.
(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)
परमहंस विष्णुपुरी
बिहार के गौरवशाली सन्त
परमहंस विष्णुपुरी
(1445-1530ई.)

महावीर मन्दिर में प्रथम तल पर स्थापित शिव-मण्डप। रुद्राभिषेक करते हुए श्रद्धालु

Title Code—BIHHIN00719

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 114

पौष, 2078 वि. सं.
20 दिसम्बर 2021ई.-
17 जनवरी, 2022ई.

आलेख -सूची

प्रधान सम्पादक
आचार्य किशोर कुणाल

सम्पादक
भवनाथ झा

पत्राचार:
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना—800001, बिहार
फोन: 0612-2223798
मोबाइल: 9334468400

E-mail:
dharmayanhindi@gmail.com
Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/
Whatsapp:
9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 113, मार्गशीर्ष, 2078 वि.सं.
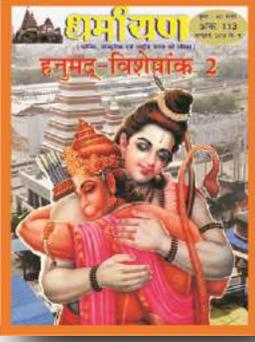
अद्भुत, आकर्षक, अनवरत अवलोकनीय, अनन्य आत्मीयता भरा धर्मायण का आवरण। सदैव की तरह ही आलेख भी आदरणीय भवनाथजी झा द्वारा चयनित अतीव उपयोगी होंगे ही। बरबस चौपाई का स्मरण : कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥तब रघुपति उठाई उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥ ऐसा कहकर हनुमान्जी अकुलाकर प्रभु के चरणों पर गिर पड़े, उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया। उनके हृदय में प्रेम छा गया। तब श्री रघुनाथजी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सींचकर शीतल किया॥ तुम सम प्रीत भरत मम भाई । आदरणीय झाजी की प्रज्ञा और असीम कर्मण्यता को नमन।

डा. तेज प्रकाश पूर्णानन्द व्यास, इंदौर

साधुवाद। सम्पादक श्रीमान् भवनाथ झाजी के अश्वस्थ रहने पर भी उनके सत्प्रयास से हनुमत् विशेषांक 2 का ससमय प्रकाशन अत्यनत श्लाघनीय है। ईश्वर उन्हें अमृततत्त्व प्रदान कर लोकहित में स्वस्थ रखें इस मङ्गलकामना के साथ उन्हें नमन। परमहंस विष्णुपुरी द्वारा रचित भक्ति रत्नावली पर आधारित नवधा भक्ति अग्रिम विशेषांक लेखन अग्रसर है। जिसमें निदेशानुसार वंदन, दास्य एवं पादसेवन भक्ति पर आधारित आलेख का चिन्तन अग्रसर है।

शत्रुघ्नश्रीनिवासाचार्यः

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं–+91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अगला अंक **सरस्वती विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। वैदिक साहित्य में सरस्वती को वाक् कहा गया है। निरुक्तकार मे भी स्पष्ट किया है कि वेद में सरस्वती शब्द नदीवाचक तथा देवतावाचक दोनों है। वैदिक-पौराणिक दृष्टि से देवी सरस्वती पर विमर्श इस अंक हेतु प्रस्तावित है।

धर्मायण का हनुमान् विशेषांक का दूसरा भाग पढ़ा। वास्तव में मैं इसे एक पत्रिका नहीं, शोध-आलेखों की पुस्तक मानता रहा हूँ। विद्वान् लेखकों ने जिस प्रकार से सन्दर्भों के साथ प्रामाणिक रूप से लोगों की भ्रान्तियाँ दूर की है, वह सनातन धर्म को प्रतिष्ठित करने में एक मील का पत्थर है। मेरा प्रस्ताव है कि इन विशेषांकों को पुस्तकाकार में प्रकाशित किया जाये, जो शोध ग्रन्थ के रूप में पठनीय हों। सम्पादक तथा पूरी टीम को बधाई।

वेदान्ताचार्य, श्रीकृष्ण कुटीर, अंबाला सिटी, 134003

अग्रिम अंक के विशेष आकर्षण

1. **भक्तिरत्नावली में श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण का स्वरूप**—डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य
2. **भक्तिरत्नावली में वंदन, पादसेवन एवं दासता का स्वरूप**—शत्रुघ्नश्रीनिवासाचार्य पं. शम्भुनाथ शास्त्री वेदान्ती
3. भक्तिरत्नावली में पूजन, ध्यान एवं आत्मनिवेदन का स्वरूप—भवनाथ झा

विद्या की देवी सरस्वती पर विशेष आलेख
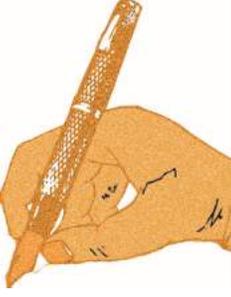
बिहार के भक्तिवादी दार्शनिक सन्त

परमहंस विष्णुपुरी

-भवनाथ झा

पूर्वोत्तर भारत में मध्यकाल की दार्शनिक धारा के सिद्धान्त प्रतिपादक निबन्धकार परमहंस विष्णुपुरी भक्ति-दर्शन के गौरवमय पुरुष हैं। इन्होंने श्रीमद्भागवत से श्लोकों का संकलन कर उन्हीं श्लोकों की व्याख्या 'कान्तिमाला' के द्वारा नवधा भक्ति का विवेचन प्रस्तुत कर भक्ति-दर्शन को परिभाषित एवं समृद्ध करते हुए एक दार्शनिक अवधारणा प्रस्तुत की। भागवत के मूल श्लोक एवं स्वोपज्ञ कान्तिमाला व्याख्या सहित यह रचना 'भक्तिरत्नावली' के नाम से प्रसिद्ध है। इस भक्तिरत्नावली का इतना अधिक प्रचार हुआ कि बंगाल से मिथिला तक ही नहीं, सम्पूर्ण उत्तर भारत में भक्ति-दर्शन के लिए एसे एक आकर ग्रन्थ माना गया। परमहंस विष्णुपुरी को सिद्ध वैष्णव सन्त की संज्ञा दी गयी तथा इन्हें माध्वाचार्य की गुरु परम्परा में स्थान मिला। पूज्यपाद नरहरि चक्रवर्ती कृत 'भक्तिरत्नाकर' के पंचम तरंग में कहा गया है-

इहार गणिते विष्णुपुरी शिष्य हइला। भक्तिरत्नावली ग्रन्थ प्रकाश करिला।
जयधर्म्म मुनिर शिष्येर शुद्ध रीति। नाम श्री पुरुषोत्तम ब्रह्मण्य विदित॥

-(पृ. सं. 310, चैतन्याब्द 426 वैशाख संस्करण)

इसी ग्रन्थ में इन्होंने प्रमाण के रूप में कवि कर्णपूरकृत "श्रीमद्गौरगणोद्देशदीपिका" को उद्धृत किया है-

श्रीमद्विष्णुपुरी यस्य भक्तिरत्नावली कृतिः।
जयधर्मस्य शिष्योऽभूद् ब्रह्मण्यः पुरुषोत्तमः॥ (पृ. सं. 311-12)

जीवगोस्वामी ने तत्त्वसन्दर्भ के 23वें अनुच्छेद में भक्तिरत्नावली को निबन्ध मानते हुए इसे प्रामाणिक माना है-

...मुक्ताफलरत्नावल्यादयो निबन्धाश्च विविधा एव तत्तन्मप्रसिद्धमहानुभावकृताः विराजन्ते।

नाभादास ने भक्तमाल में भी इनका उल्लेख किया है-

कलि जीव जँजाली कारनै, बिष्णुपुरी बड़ि निधि सँची।
भगवत धर्म उतंग आन धर्म आननन देखा। पीतर पटतर बिगत, निकष ज्यौं कुंदन रेखा।
कृष्ण कृपा कहि बेलि फलित सतसंग दिखायो। ग्रन्थ कोटि को अर्थ, तेरह बिरंचन में गायो॥
महासमुद्र भागौत तें, भक्ति-रतन-राजी रची। कलि जीव जँजाली कारनै, बिष्णुपुरी बड़ि निधि सँची॥47॥

इस अंश पर प्रियादास ने अपनी टीका में उद्धृत किया है कि एक बार चैतन्य महाप्रभु ने पुरी में वास करते हुए काशी में स्थित परमहंसजी को पत्र लिखा कि भगवान् के लिए एक रत्नमाला भेजें। चैतन्यदेव का आशय समझ कर उन्होंने 'भक्तिरत्नावली' नामक ग्रन्थ की रचना कर उन्हें प्रेषित कर दिया।

जगन्नाथमांझ बैठे महाप्रभुजू वे चहूँ और भक्तभूप भार अति छाई है॥

बोले विष्णुपुरी पुरी काशी मध्य रहे जाते जानियत मोक्ष चाह नीकी मन लाई है॥
लिखि प्रभु चाठी आप मणिगणमाला एक दीजिए पठाई मोहि लागत सुहाई है॥
जानि लई बात निधि भागवत रत्नदाम दई पठै आदि मुक्ति खोदि कै बहाई है॥117॥

बिहार के लिए यह गौरव का विषय है कि परमहंस विष्णुपुरी वर्तमान दरभंगा जिला के अंतर्गत तरौनी गाँव के निवासी थे। उनका डीह आज तक सुरक्षित तथा पूजित है। उन्होंने जयनगर के पास शिलानाथ महादेव की भी स्थापना की थी। चन्द्रदत्त ओझा ने भगवद्भक्तिमाहात्म्य में इनका पूरा जीवन परिचय दिया है।

'भक्तिरत्नाकर' (चैतन्याब्द 426, मुर्शिदाबाद, पृ. 310) ग्रन्थ में श्रीनरहरि चक्रवर्ती ने विष्णुपुरी की परम्परा इस प्रकार दी है—नारायण, > ब्रह्मा, > नारद, > व्यास, > शुकदेव, > मध्वाचार्य, > पद्मनाभाचार्य, > नरहरि, > श्रीमाधव, अक्षोभ, > जयतीर्थ, > ज्ञानसिन्धु, > महानिधि, > विद्यानिधि, > राजेन्द्र, > जयधर्म्म, > विष्णुपुरी। मध्याचार्य की मान्य तिथि 1238—1317 ई. है। इस गणना में लगभग 200 वर्षों में 12 शिष्य परम्परा मानी जाती है। गुरु-शिष्य परम्परा में तीन पीढ़ी तक के सन्त समकालिक माने जा सकते हैं।

विष्णुपुरी की रचना के रूप में एक पुस्तक 'छन्दिता गीता' एवं 'गीतगुच्छ' ये दो रचनाएँ भी उपलब्ध है, जिसका प्रकाशन क्रमशः साधनपथ प्रकाशन तथा परमार्थसाधक संघ से हुआ है। रामकृष्ण मिशन के शिवानन्द पुस्तकालय, खार (पश्चिम), मुंबई के द्वारा जारी पुस्तक सूची में उपलब्ध है। इन ग्रन्थों को देखना होगा, जिससे यह पता चले कि किस विष्णुपुरी की यह रचना है।

इनकी रचना कान्तिमाला व्याख्या सहित भक्तिरत्नावली प्रकाशित है। इसके कई प्रामाणिक प्राचीन संस्करण हो चुके हैं-

1. भक्तिरत्नावली श्रीविष्णुपुरीकृतकान्तिमानाव्याख्यासहिता, सम्पादक—डा. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, प्रकाशक—प्रकाशन विभाग, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1968ई.
2. The Bhaktiratnavali with the commentary of Visnupuri, translated by Nandlal Sinha, a proffessor of sanskrit, (retired.), published by the Panini Office, Bhuvaneswari Asrama, Bahadurganj, Allahabad, 1912. इसमें केवल भागवत के श्लोकों का अनुवाद किया गया है, उस पर विष्णुपुरी की जो कान्तिमाला व्याख्या है, उसके आधार पर केवल संक्षिप्त टिप्पणी लिख दी गयी है। इस संस्करण में नारदभक्तिसूत्र, शाण्डिल्यसूत्र भी संकलित हैं।
3. उपर्युक्त सम्पादन के आधार पर केवल भक्तिरत्नावली का सम्पादन हिन्दी अनुवाद के साथ 1914ई. में पृथक् रूप में श्यामाचरण संस्कृत ग्रन्थावली के अंतर्गत पाणिनि कार्यालय से किया गया। लेकिन इसमें केवल भागवत के श्लोकों का ही अनुवाद है, विष्णुपुरी कृत व्याख्या का अनुवाद नहीं है।
4. चैतन्याब्द 491 में हरिभक्त दास द्वारा सम्पादित तथा बंगला में किरणकला अनुवाद के साथ पुस्तक का प्रकाशन बंगला लिपि में हुआ। इसके प्रकाशक गौराङ्ग हरिपाल भक्तिभूषण हैं, किन्तु किस स्थान से प्रकाशित हुआ है, इसकी वैधानिक सूचना नहीं है।
5. Bhakti Ratnavali An Anthology From Srimad Bhagavata By VISHNU PURI (Paperback, Sanskrit, Swami Tapasyananda), Sri Ramakrishna Math, 2016.

इस ग्रन्थ पर दार्शनिक दृष्टि से विवेचन कम हुआ है। अनुवादकों ने भागवत के श्लोकों का तो विवेचन कर

दिया है, किन्तु उन्होंने जो व्याख्या की है तथा अपना दर्शन प्रतिपादित किया है, उस पर गम्भीरतापूर्वक कार्य नहीं हुआ है।

आज स्थिति यह है कि सम्पूर्ण पूर्वोत्तर भारत में मध्यकालीन भक्ति-परम्परा में चैतन्यदेव एवं शंकरदेव के सिद्धान्तों को प्रभावित करनेवाले परमहंस विष्णुपुरी आज अल्पज्ञात हैं। इनकी रचना 15वीं शती में उनके जीवनकाल में बंगला में अनूदित हो चुकी है। आसाम की परम्परा के अनुसार एक जगदीश मिश्र जगन्नाथ पुरी से इनकी पुस्तक भक्तिरत्नावली लेकर आसाम गये। वहाँ प्रतिदिन कीर्तन टोली दिन में कीर्तनियाँ नाटक का अभ्यास करती थी तथा रात में नाटक की प्रस्तुति होती थी। एक वर्ष तक यह सिलसिला चलता रहा। इसके बाद जब जगदीश मिश्र का देहान्त हुआ तो स्वयं शंकरदेव ने उनका दाह-संस्कार किया था। अभीतक जगदीश मिश्र का व्यक्तित्व भी ज्ञात नहीं हुआ है। आसाम की परम्परा अनुमान लगाती रही है कि वे भी मिथिला के ही रहे होंगे और उन्ही के द्वारा प्रस्तुत इस नाटक से कीर्तनियाँ नाटक की परम्परा आरम्भ हुई, जो नेपाल तक फैली। वहाँ के राजा जगज्ज्योतिर्मल्ल ने हरगौरी-विवाह-जैसे नाटक की रचना की।

आज आवश्यकता इस बात की है कि बंगाल, आसाम, उड़ीसा, वृन्दावन एवं मिथिला की परम्परा का विधिवत् अध्ययन कर 15वीं शती के अंत तथा 16वीं शती के आदि में उत्पन्न भक्ति-सम्प्रदाय के कवियों तथा दार्शनिकों का अध्ययन किया जाये, ताकि हम इतिहास के साथ न्याय कर सकें।

इसी परिकल्पना की यह पहली कड़ी है। विद्वानों से आग्रह है कि सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर अपने पूर्वज विद्वानों को उनका उचित स्थान देने हेतु शोधकार्य जारी रखें। इस अंक के सभी लेखकों को साधुवाद।

***

आवरण-चित्र

परमहंस विष्णुपुरी का अभीतक कोई चित्र नहीं बना था। ऐसे चित्र यद्यपि कल्पनाप्रसूत होते हैं,किन्तु उसमें उनका जीवन-दर्शन मिल जाये तो यही उसकी सफलता मानी जाती है। इस चित्र में हम शैव एवं वैष्णव दोनों सम्प्रदाय की झलक पाते हैं। प्रथमतः वे शैव-संन्यासी हुए। कथा के अनुसार उन्होंने 11 वर्षों तक काशी में शैव बने रहे। उन्होंने दण्ड-कमण्डलु भी धारण किया। उन्होंने भगवान् शंकर की शिला की स्थापना की तथा वही पर उन्हें भगवान् शिव ने दर्शन देकर विष्णुमन्त्र की उपासना करने की आज्ञा दी। यह कथा शिव-एवं विष्णु के ऐक्य की कथा है, जो 11वीं शती से सम्पूर्ण उत्तर भारत में फैली है। मिथिला में तो इस अवधारणा को व्यवहार में भी उतारा। अतः यहाँ हमें शिवलिंग पर राममन्त्र को उत्कीर्ण करने की भी परम्परा आगे बढ़ी। अतः विष्णुपुरीजी के भाल पर त्रिपुण्ड्र एवं ऊर्ध्वपुण्ड्र दोनों रखे गये हैं। कथा के अनुसार वे दूसरी बार भी छुपा कर रखे गये दण्ड एवं कमण्डलु के साथ घर से निकले थे अतः दण्ड भी दिया गया है। शिव तथा विष्णु के ऐक्य को अपने जीवन में उतारना उनके मैथिलत्व की पहचान है। वस्तुतः वे विद्यापति के उत्तराधिकारी दिव्यपुरुष हैं।—भवनाथ झा

परमहंस विष्णुपुरी : व्यक्तित्व एवं काल
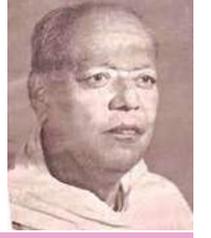
अनु.— **डा. काशीनाथ मिश्र**

उच्चतर माध्यमिक शिक्षक, ' विद्या भारती' अखिल भारतीय शिक्षण संस्थान, सरस्वती विद्या मंदिर, शास्त्रीनगर, मुंगेर।

मूल लेखक
आचार्य रमानाथ झा
(1906 -1971ई.)

पूर्वोत्तर भारतीय क्षेत्रों में भक्ति का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत करनेवाले 15वीं शती के सन्त परमहंस विष्णुपुरी के सम्बन्ध में ऐतिहासिक विवेचन बहुत कम हो सका है। इनकी रचना 'भक्तिरत्नावली' तथा उसकी व्याख्या 'कान्तिमाला' अनेक प्रकाशनों के बाद भी अल्पज्ञात है। कुछ सम्पादकों ने कान्तिमाला व्याख्या के कर्तृत्व पर भी भ्रम फैलाया है, तो कुछ ने विष्णुपुरी के काल-निर्णय को लेकर परस्पर विरुद्ध तर्क दिये हैं। इन सभी मतभेदों पर ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन कर आचार्य रमानाथ झा ने अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया था, जो प्रथम बार पटना विश्वविद्यालय के जॉर्नल में 1945ई. में अगरेजी में प्रकाशित हुआ। इसके बाद पुनः 'आचार्य रमानाथ झा ग्रन्थावली' के तीसरे खण्ड में भी इसका संकलन हुआ। इसमें उन्होंने पंजी के प्रामाणिक स्रोत के आधार पर मध्यकालीन ज्ञात व्यक्तियों से उनका संबंध दिखाकर काल-निर्णय प्रस्तुत किया है। इसी शोधपत्र का अविकल हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया गया है। यहाँ तथ्यों की स्पष्टता हेतु उपशीर्षकों में विभाजन सम्पादन के क्रम किया गया है। इस अनुवाद के लिए डा. काशीनाथ मिश्र का आभार!

मध्यकालीन भारत के धार्मिक इतिहास में परमहंस विष्णुपुरी का नाम बहुत प्रमुख है। धार्मिक विचारों से आप्लावित सन्त ने विशिष्ट प्रतिभा का उपयोग कर सिद्ध किया है कि उनके भक्तिरत्नों की माला भक्तिरत्नावली ने वास्तव में पूरे आर्यावर्त में असम से गुजरात तक भक्तों को प्रेरित किया है। उन्हें बंगाल में वैष्णववाद का अग्रणी माना गया है एवं किंवदंतियों को उस रचना 'भक्तरत्नावली' के इर्द-गिर्द बुनकर उसकी श्रेष्ठता के लिए गौरव-गाथा गायी गयी गई है। वास्तव में यह महान् ग्रन्थ भागवत से प्रेरित मध्यकालीन भारत के भक्ति-आंदोलन की महान् रचना है। चैतन्यवाद का इतिहास उस विद्वान् संन्यासी की प्रशंसा से भरा पड़ा है और पिछली चार शताब्दियों में रचित महाप्रभु के जीवन और शिक्षाओं से जुड़ा शायद ही कोई ऐसा कार्य हो, जो विष्णुपुरी द्वारा किये गये कार्य और उनकी 'भक्तिरत्नावली' की प्रशंसा न करता हो, जिसने सम्पूर्ण भारत को छठी शती से ही प्रवाहित भक्ति की एक नयी धारा प्रदान की।

नामकरण पर अनेक पक्ष

फिर भी यह कम आश्चर्य की विषय नहीं है कि हम ऐसे संन्यासी के विषय में दृढ़ता के साथ बहुत कम जानते हैं। संन्यास ग्रहण करने और नया नाम विष्णुपुरी धारण करने से पहले जिस नाम से उन्हें जाना जाता था,

"हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि विष्णुपुरी लौरिय कृष्णदास से पहले थे, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने 15वी शताब्दी में किसी समय 'भक्ति रूपी रत्नों के हार, 'भक्तिरत्नावली' का बंगाली में अनुवाद किया था।"

यह विवाद का विषय है। 'भक्तिरत्नावली' के कलकत्ता संस्करण के पश्चात् (एक अनुवाद के साथ बंगाली वर्ष 1318 में) कलकता से प्रकाशित पं. मदनमोहन वंद्योपाध्याय द्वारा बंगाली कविता में उनका नाम विष्णुशर्मा दिया गया है। श्री मंजुलाल मजुमदार यद्यपि 1938 में इलाहाबाद, हिन्दुस्तान में प्रकाशित अपने पत्र में (खण्ड 8 भाग 1) उन्हें वैकुंठपुरी कहते हैं। राय बहादुर डी. सी. सेन अपने 'चैतन्य एंड हिज कंपेनियन्स' में उन्हें संन्यास-ग्रहण के बाद माधव तपस्वी कहते हैं।

सम्प्रदाय पर मतभेद

रूप गोस्वामी की पदावली के परिचय में प्रो. एस.के.डे. ने उन्हें साबित किया है कि वे शांकर अद्वैतवादियों की परम्परा के दशनामी संन्यासी थे, जबकि श्री एम.एल. मजूमदार ने उपर उल्लिखित अपने शोधपत्र में यह मत व्यक्त किया है कि शायद वे निम्बार्क के अनुयायी थे। फिर 'चैतन्यचरितामृत' के प्रसिद्ध लेखक कृष्णदास कविराज के अनुसार, वे माधवेन्द्रपुरी के शिष्य थे, लेकिन, 'गौड़-गणोद्देशदीपिका' के प्रसिद्ध लेखक कवि कर्णपूर के अनुसार, वे जयधर्म के शिष्य थे।

कालखण्ड पर भ्रान्तियाँ

उस युग के बारे में, जिसमें वे फले फूले, उसके बारे में हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वे लौरिय कृष्णदास से पहले थे, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने 15वी शताब्दी में किसी समय 'भक्ति रूपी रत्नों के हार, 'भक्तिरत्नावली' का बंगाली में अनुवाद किया था। इसलिए यह लगभग तय है कि वे महाप्रभु चैतन्यदेव के पूर्ववर्ती थे, लेकिन अवधि के बारे में व्यापक रूप से दो भिन्न विचार हैं– जो कवि कर्णपूर को मानते हैं, उन्हें चैतन्य से बहुत पहले, कुछ सदियों पूर्व मानते हैं। वे इस आधार पर रखते है कि चैतन्य शिष्यता के पंक्ति में जयधर्म से वंश में सातवें थे। हलाँकि, कुछ अन्य विद्वानों ने, जो कृष्णदास कविराज को प्रामाणिक मानते हैं और उन्हें माधवेन्द्र पुरी का शिष्य मानते हुए उन्हें एक समकालीन बनाते है। बंगाल के वैष्णवों में दोनों मतों का समर्थन करनेवाली किंवदतियाँ प्रचलित हैं, लेकिन इस आशय की एक बहुत मजबूत परंपरा है कि विष्णुपुरी चैतन्य से मिले थे। प्रो. एस. के. डे इस परम्परा को एक शुद्ध मिथक मानते हैं। डा. बी. बी. मजूमदार, ने बंगला में लिखित 'श्रीचैतन्यचरित उपादान' नामक अपने महत्त्वपूर्ण पुस्तक में दोनों मतों पर विमर्श किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विष्णुपुरी शायद जयधर्म के शिष्य थे; लेकिन यह हो सकता है, दीर्घायु हुए हों और इस प्रकार माधवेन्द्रपुरी और चैतन्यदेव का भी वे अनुग्रह प्राप्त कर सके।

लेकिन, भक्तिरत्नावली की कुछ पाण्डुलिपि की पुष्पिका के दो श्लोकों के कारण भ्रम और भी बढ गया है। 'भक्तिरत्नावली' के दोनों प्रकाशित संस्करणों में पूर्व संदर्भित कलकता संस्करण एवं इलाहाबाद संस्करण के 'सेक्रेड बुक्स ऑफ द हिन्दूज सीरीज' के खण्ड 8 में ये श्लोक ग्रन्थ के पूर्ण होने का समय और स्थान का निर्देश करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि 'भक्तिरत्नावली' 'कान्तिमाला' नामक व्याख्या के साथ काशी में एक हरि मंदिर में महेश के समक्ष शक वर्ष 1555 (1632 इस्वी के बराबर) में फाल्गुन शुक्ल पक्ष के, दूसरे दिन मंगलवार की सम्पन्न हुई। यह तिथि

"विष्णुपुरी ने स्वयं भक्तिरत्नावली के प्रत्येक विरचन की पुष्पिका में तथा दोनों अंतिम श्लोक में विष्णुपरी अपने को 'तैरभुक्त परमहंस' कहते हैं, जो इसकी सभी पाण्डुलिपियों में पाया जाता है।"

चैतन्यदेव से लगभग एक शताब्दी बाद की है और इसलिए यह 'इंडिया ऑफिस', इंग्लैड की पाण्डुलिपि में इस तिथि का निराकरण हो जाता है (एगोलिंग, खण्ड 6 पृष्ठ. 12 72-3), जिससे स्पष्ट होता है कि यह संवत् 1662 अर्थात् 1595 ई. का है।

इसलिए इन श्लोकों को प्रतिलिपिकार द्वारा रचित श्लोक के स्थान पर आदर्श पाण्डुलिपि की पुष्पिका मान सकते हैं, जिसे प्रतिलिपिकार ने सीधे नई पाण्डुलिपि में लिख दिया है। जैसा कि कई विद्वानों ने इसे उचित ढंग से लिया है लेकिन कुछ विद्वानों ने भ्रान्ति फैलायी है, और उन्होंने वास्तव में निम्न स्तरीय विचारों को सामने रखा है, जो मनोरंजक से कम नहीं हैं।

उदाहरणार्थ श्री एम. एल. मजूमदार इन श्लोकों की रचना का श्रेय 'कान्तिमाला' के लेखक को देते हैं। इसे संभव बनाने के लिए उन्होंने विष्णुपरी से इस भाष्य के कर्तृत्व को हटा दिया, जिसे इतने लम्बे समय तक और कई लोगों द्वारा उनका माना जाता था। उन्होंने इसका श्रेय एक श्रीधर को दिया, जिसके अनुसार, उन्होंने काशी में इस श्लोकों के साथ कान्तिमाला व्याख्या की रचना की थी। 'भक्तिरचनावली' के इलाहाबाद संस्करण द्वारा यह भ्रम आरम्भ किया गया है, जहाँ कान्तिमाला के समापन पद इन दोनों श्लोकों के साथ पाद-टिप्पणी में दिया गया है। इन्हें पाद-टिप्पणी में रखा गया, क्योंकि वे पाण्डुलिपि में नहीं थे, जिससे वह संस्करण तैयार किया गया था। अधिकांश पाण्डुलिपि में कान्तिमाला के समापन श्लोक, जिसमें विष्णुपुरी बताते है कि उन्होंने 13वीं शताब्दी के भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधराचार्य का अनुसरण करते हुए अपनी भक्तिरत्नावली की व्याख्या की रचना की। उन्होंने स्वयं को श्रीधर दास का ऋणी बतलाया है अशुद्धियों के लिए क्षमा याचना की है। इन श्लोकों को इलाहाबाद संस्करण में टिप्पणी में डाल दिया गया है। श्री मजूमदार विष्णुपुरी के स्पष्ट शब्दों के सरल अर्थ को पढ़ने के बजाय एक पूरी तरह से अलग श्रीधर का निर्माण करते हैं, जिसे वे कान्तिमाला की रचना का श्रेय देते हैं। इन समापन श्लोकों को एक सामान्य अर्थ के साथ समझाने के लिए ही इसे पुष्पिका में जोड़ा गया है। उन श्लोकों को कान्तिमाला के रचयिता का मानना बिल्कुल निरर्थक हैं।

इससे अधिक मौलिक तथा विदग्ध दृष्टि नासिक के प्रोफेसर जी.वी. देवस्थली की है, जिन्होंने अपना शोध-पत्र बनारस में पिछले ओरिएंटल सम्मेलन से पूर्व पढ़ा। उन्होंने श्लोक की पहली पंक्ति के पढ़ने में एक संशोधन का प्रस्ताव करके इस गुत्थी को खोलने का प्रयास किया है, जिसके माध्यम से शक वर्ष 1555 को 300 साल पूर्व 1255 में ले जाया गया है। वास्तव में, उन्होंने इस समस्या पर ऐसा तीव्र प्रकाश दिया है कि इससे यह प्रसंग ही पूरी तरह अस्पष्ट हो गया है!

जन्मस्थान पर कोई विवाद नहीं

संन्यासी विष्णुपुरी की उम्र और व्यक्तित्व के बारे में इस सभी परस्पर विरोधी और भ्रमित करनेवाले विचारों के बीच एक तथ्य विवादों से परे है और वह है इस विद्वान् का स्थान-निर्धारण। विष्णुपुरी ने स्वयं 'भक्तिरत्नावली' के प्रत्येक विरचन की पुष्पिका में तथा दोनों अंतिम श्लोक में विष्णुपुरी अपने को 'तैरभुक्त परमहंस' कहते हैं, जो इसकी सभी पाण्डुलिपियों में पाया जाता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि यद्यपि उन्होंने संसार और उससे संबंधित सभी चीजों को त्याग दिया था और उन्होंने वैरागी का वेश धारण कर लिया था और जिस नाम से जाने जाते थे,

उसका उन्होंने त्याग कर दिया था और उसे भूलने पर वे गर्व महसूस करते थे। तीरभुक्ति की पवित्र भूमि में पैदा होने का तथ्य उन्हें सबसे प्रिय था, जिसे वे भूले नहीं। अतः यह स्पष्ट है कि उन्हें जन्मभूमि का प्यार था। वास्तव में यदि विष्णुपुरी ने स्वयं इसका इतना उल्लेख नहीं किया होता तो विश्वास नहीं होता कि मिथिला को इतने प्रतिष्ठित पुत्र को जन्म देने का गौरव प्राप्त था।

क्या हमने विद्यापति के बारे में महान् विवाद नहीं देखा है और गोविन्ददास की पहचान के बारे में संदेह करनेवाले विद्वान् नहीं है? सौभाग्य से, विष्णुपुरी के बारे में इस तरह के किसी भी संदेह का कोई आधार नहीं है और सभी विद्वानों ने एकमत से सहमति व्यक्त की है कि वे तिरहुत के मूल निवासी थे। 'भक्तिरत्नवाली' के कलकता संस्करण के विद्वान् सम्पादक ने अनके जन्म के बारे में भी विवरण दिया है, जो अधूरा और अनिर्णायक है और वे इसके स्रोतों का संकेत भी नहीं देते है, जहाँ से उन्हें यह सब मिला होगा। लेकिन वे हमें बिल्कुल सही बताते हैं कि विष्णुपुरी मिथिला ब्राह्मणों के करमहा परिवार से थे, तरौनी के निवासी थे और संन्यास के पूर्व विष्णुशर्मा कहलाते थे।

मिथिला की पंजी : इतिहास का विशिष्ट स्रोत

मिथिला में ब्राह्मणों के पंजियों की प्रथा सबसे विस्तृत एवं व्यापक है, यहाँ सभी महत्त्वपूर्ण परिवारों की प्रमाणिक एवं अधिकारिक वंशावली है जो कि मिथिला के कर्णाट राजाओं के अंतिम महाराजा हरिसिंह देव के दिनों से पीढ़ी दर पीढ़ी पेशेवर पंजीकारों द्वारा संरक्षित है। शक वर्ष 1248 (1326 ई.) में सदियों से आयी परम्परा को व्यवस्थित रूप दिया गया। इन पंजियों में वो व्यापक वर्ग है। उनमें से अधिक प्राचीन जिसे मूलपंजी कहा जाता है, खुद को एक ही परिवार या वंशावली पंजी तक सीमित रखता है और बेटों और बेटियों के नाम विवाह आदि समय में नाम सम्मिलित कराते हैं।अन्य पंजी जो आजकल ज्यादा प्रचालित है उसे शाखा पंजी कहते हैं। इसका आरम्भ एक परिवार के साथ, दरभंगा के महाराजाधिराज का परिवार और जैसे ही उनमें विवाह होता है दूसरे परिवार में शाखाएँ चली जाती है। इसलिए, सभी महत्त्वपूर्ण परिवारों की वंशावली इसमें शामिल है, क्योंकि सभी महत्त्वपूर्ण परिवार विवाह द्वारा परस्पर जुड़े हुए है। इसमें यद्यपि महिलाओं के नाम नहीं आते और बेटियों के नाम दर्ज नहीं होता। उनके जन्म के परिवारों एवं विवाह के परिवारों में ये पंजी दिन व दिन बढ़ रहा है और पेशेवर पंजीकार इसकी व्यवस्था एक मूल्यवान् खजाने के रूप में देखते हैं। वे किसी सामान्य व्यक्ति को उसका फयोग करने की अनुमति नहीं देते हैं, क्योंकि उन्हें तकनीकी शैली में लिखा गया है। वे पहली नज़र में समझ पाने लायक भी नहीं है, लेकिन कुछ अभ्यास कर लेने के बाद उनकी गुत्थियों और जटिलताओं को सुलझाया जा सकता है।

पंजी के आधार पर कालनिर्धारण

सौभाग्यवश मूल एवं शाखा पंजी की पाण्डुलिपियाँ दरभंगा राज पुस्तकालय में अधिगृहीत हुई है। यह तालपत्र पर 626 पत्रों की है,जिसका लेखनकाल शक वर्ष 1642 (1720ई.) है। इसके साथ ही दो अन्य खण्डित पाण्डुलिपियाँ भी मूल एवं शाखापंजी की हैं, जिनमें से लेखन शैली के आधार पर एक तो 400 वर्ष पुरानी लगती है और दूसरी भी 200 वर्ष से नयी नहीं है। 'भक्तिरत्नावली' के कलकता संस्करण के विद्वान् सम्पादकों को धन्यवाद देता हूँ, जिनके द्वारा दिये गये संकेत के आधार पर मैं (डा. रमानाथ झा) विष्णुपुरी का उल्लेख खोजने में सफल रहा। मूल पंजियों में गहराई से गोता लगाने पर महत्त्वपूर्ण विवरण मिला और परमहंस के पहचान के बारे में कोई संदेह नहीं रहा किवे वर्तमान करमहा तरौनी मूल से संबंधित है। यहाँ

मैं विष्णुपुरी के विषय में उन संबन्धित तथ्यों का विवरण उस में के इतिहास के साथ दे रहा हूँ और इन सभी तथ्यों के आधार पर यथासम्भव उनके अनुमानतः काल के विषय में निर्णय कर रहा हूँ।

लेकिन, ऐसा करने से पहले, मैं यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि विष्णुपुरी के काल-निर्धारण करने के सभी प्रयास अब तक शिष्य-परम्परा के साक्ष्य पर आधारित हैं, जिसे किसी भी स्थिति में निर्णायक नहीं माना जा सकता है ।एक गुरु उसी उम्र का हो सकता है जिस उम्र में वह शिष्य को दीक्षा देता है और शिष्यता की कोई भी पंक्ति एक ही पीढ़ी में हो सकती है ।इस साक्ष्य पर निर्णीत किसी तिथि को अन्य साक्ष्यों से पुष्ट करना होगातब यह एकल साक्ष्य विश्वसनीय हो सकता है। दूसरी ओर, जन्म की वंशावली के आधार पर भी काल -निर्धारण नहीं किया जा सकता है, किन्तु यह विश्वसनीय हो सकता, क्योंकि एक पिता किसी भी स्थिति में अपने बेटे या बेटी के समान उम्र का नहीं हो सकता। इस दृष्टि से देखा जाए तो विष्णुपुरी की संभावित आयु का निर्धारण करने में यहाँ किए गए प्रयास अमूल्य हो सकते हैं।

म.म. महेश ठाकुर के साथ सम्बन्ध

'भक्तिरत्नावली' के कलकता संस्करण के सपादक के अनुसार संन्यासी विष्णुपुरी का जन्म मिथिला में ब्राह्मणों के करमहा परिवार में हुआ था, जो तेरह सर्वोच्च परिवारों में से एक था एवं वाजसनेय के वत्स्य गोत्र से सबंधित था। जब शक वर्ष 1248 में मिथिला में राजा हरिसिंहदेव द्वारा पहली बार पंजियों की स्थापना की गई, तो इस करमहा परिवार में एक गंगेश्वर थे, जिसके सात पुत्र देश के विभिन्न हिस्सों में चले गये और विभिन्न गावों में बस गए। पंजी व्यवस्था से स्पष्ट हुआ कि गंगेश्वर के दूसरे पुत्र 'श्रीधर' थे जो तरौनी जा कर बस गये थे। यह तरौनी अभी भी अवध तिरहुत रेलवे पर सकरी रेलवे स्टेशन के पास एक समृद्ध गाँव है, जो दरभंगा से 15 मील की दूरी पर है। श्रीधर के दो पुत्र एवं एक पुत्री थी। बड़े पुत्र का नाम रतिधर था, जिसे रतिश्री कहा जाता था। बेटी का नाम सोरमा था। इस सोरमा का विवाह खंडवला के श्रीपति ठाकुर से हुआ, उन्हें दुबे ठाकुर भी कहा जाता है ।दूबे और सोरमा के सबसे छोटे पुत्र चन्द्रपति ठाकुर थे, जिन्हें चान ठाकुर के नाम से जाना जाता था ये चार प्रतिष्ठित पुत्रों के भाग्यशाली पिता थे, ये सभी प्रसिद्ध विद्वान् और महामहोपाध्याय थेघ, दामोदर और महेश थे इससे से सबसे छोटे महेश दरभंगा राज के संस्थापक हुए। और उन्होंने बादशाह अकबर से 'वसु-नग-वेद-वसुन्धरा' अर्थात् शक वर्ष 1478 अर्थात 1556 ई में 'सरकार-ए तिरहुत' का फरमान प्राप्त किया था।

करमहा मूल के तरौनी ग्रामवासी **श्रीधर**

ज्येष्ठ पुत्र **रतिधर**

सबसे छोटी पुत्री **सोरमा** जिसका विवाह खण्डवला–भौर मूल के श्रीपति ठाकुर प्रसिद्ध दूबे ठाकुर से हुआ।

सोरमा के पुत्र **चान ठाकुर**

कनिष्ठ पुत्र **महेश ठाकुर,** जो दरभंगा राज के संस्थापक हुए।
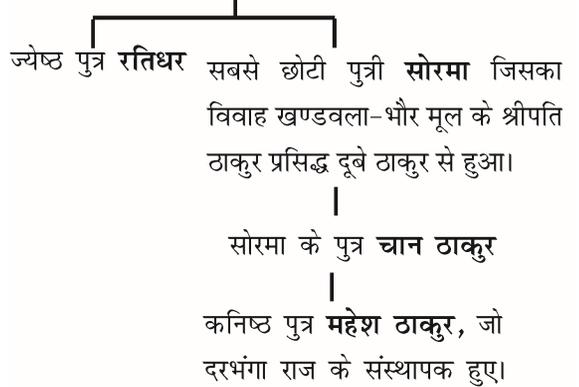
राजा शिवसिंह के साथ सम्बन्ध

श्रीधर के सबसे बड़े पुत्र रतिधर की दो पत्नियाँ थी, उनकी पहली पत्नी का नाम रूपिणी था और वह हेलू की बेटी थी, जो धौली गाँव के निवासी प्रसिद्ध सोदरपुर के ग्रहेश्वर के पुत्र थे। इस हेलू का एक और भाई थे भद्रेश्वर, जो ग्रहेश्वर के दूसरे पत्नी से दूसरा पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए थे। भद्रेश्वर की दूसरी पत्नी से प्रथम सन्तन पुत्री थी, जिसका नाम मझैनी था। इनका विवाह

महाराज शिवसिंह से हुआ, जो प्रसिद्ध ओइनवार परिवार के रूपनारायण थे, जिन्हें उल्लेख विद्यापति ठाकुर ने अपने कई गीतों की भनिता में अमर कर दिया है। जो इस कवि के अनुसार 'अनल-रन्ध्र-कर' यानी लक्ष्मण संवत् 192 अर्थात् शक वर्ष 1324 अर्थात् 1402 ई. में मिथिला के सिंहासन पर आरूढ़ हुए थे।
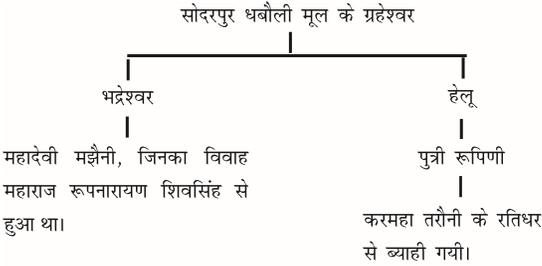
राजा भैरव सिंह के साथ सम्बन्ध

रतिधर की दूसरी पत्नी मौरा उदयनपुर के निवासी जयबाल मूल की सन्तन थी। वह कुश की भवानो नमक पत्नी से उत्पन्न चार बेटियों में से दूसरी बेटी थी। यह भवानो कलसामा ग्रामवासी मांडर मूल के महामहोपाधायाय सुरपति की सबसे छोटी बेटी थी। संयोग से ये सुरपति महामहोपाध्याय बटेश्वर के कनिष्ठ पुत्र थे, जिनके दौहित्र भवनाथ मिश्र प्रसिद्ध अयाची थे, जो शंकर मिश्र के पिता थे। कुश और भवानो से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्री गौरा छन्द कामत नाम गाँव के निवासी हरिअम्मे मूल के दीनू मिश्र के साथ ब्याही गयी। इस दीनू मिश्र की एक दूसरी पत्नी भी थी, जिससे एक पुत्री का जन्म हुआ था, जिसका नाम दुर्भाग्य से पंजी में उपलब्ध नहीं है। दीनू मिश्र की इस पुत्री की विवाह हसौली ग्रामवासी सोदरपुर मूल के राम के साथ हुआ था। दीनू मिश्र पुत्री में राम से उत्पन्न सुषमा नामक एक पुत्री थी और इस सुषमा का विवाह महाराज भैरव सिंह के साथ हुआ था। इस 'हरिनारायण' विरुदधारी ओइनवार वंशीय भैरव सिंह ने, एस.एन. सिन्हा के अनुसार, 15वीं शती के उत्तरार्द्ध में अपने अग्रज धीर सिंह से मिथिल के सिंहासन का उत्तराधिकार प्राप्त किया था और वे विख्यात विद्वान् पक्षधर, वाचस्पति, वर्द्धमान, रुचिपति एवं अन्य के आश्रयदाता बने थे।

रतिधर की दूसरी पत्नी मौरा के पुत्र का नाम 'रमापति' अथवा 'रामपति' हुए।(दोनों नाम पंजियों में उपलब्ध हैं) और ये प्रसिद्ध परमहंस है, जिन्होंने संन्यास लेने पर नया नाम 'विष्णुपुरी' अपनाया।

संन्यासी विष्णुपुरी का ऐसा विशिष्ट जन्म था, इतने कुलीन परिवार में, इतने समृद्ध रूप से जुड़े हुए और उन सभी संबधो में वर्तमान उद्देश्य के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण उनके पिता रतिधर का महाराजा शिव सिंह रूपनारायण के साथ संबंध है। पूर्व में कहा गया है कि महाराजा शिवसिंह 1402 ई. में पचास वर्ष की आयु में मिथिला के सिंहासन पर बैठे और केवल चार वर्षो तक शासन किया। उसके बारे में यह भी ज्ञात है कि मुसलमानों के साथ युद्ध में मैदान से भाग गये थे उसके बाद उनके बारे में कुछ नहीं सुना गया था और नहीं उनका शरीरर बरामद हुआ था। उनकी छह पत्नियाँ थी। महान् कवि विद्यापतिउनकी पाँच पत्नियों के नाम लखिया, सुसमता, रूपिणी, मधुमती और मोदवती का उल्लेख करते हैं लेकिन भद्रेश्वर की बेटी महादेवी मझैनी का नाम कवि के किसी भी गीत में नहीं मिलता है। इसलिए यह मानना अनुचित नहीं है कि वह अपनी सभी पत्नियों में सबसे छोटी थी। जिससे राजा ने एक

या दो साल पहले ही शादी की थी। इसके बाद वे रहस्यमय तरीके से संसार से गायब हो गये। संभावना है कि मझैनी का वावह 1405ई. में हुआ होगा, जिससमय वह 10 वर्ष की रही होगी अतः उसका जन्म 1395 ई. में हुआ माना जा सकता है। वह अपने पिता भद्रेश्वर की सबसे बड़ी बेटी थी। भद्रेश्वर का जन्म 1365 में हुआ होगा।अब भद्रेश्वर पिता ग्रहेश्वर की पहली पत्नी से दूसरे पुत्र थे। इससे ग्रहेश्वर के तीन पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ हुई।भद्रेश्वर के पिता ग्रहेश्वरने दूसरा विवाह किया, जिससे एकमात्र पुत्रहेलू का जन्म हुआ।प्रतीत होता है किपहली पत्नी की मृत्यु के कारण उन्होंने 1375 ईस्वी में दूसरा विवाह किया। अतः हेलूका जन्म 1380 में हुआ होगा और मान लीजिए कि उनकी एक सबसे बड़ी बेटी, जो उनसे तीस साल की उम्र में पैदा हुई थी,उसका विवाह10 साल की उम्र में रतिधर से हुई होगी और 25 साल की उम्र में रतिधर का जन्म हुआ होगा।अतः रतिधर का जन्मकाल लगभग 1395 इस्वी सन् का प्रतीत होता है।

पहली पत्नी रूपिणी से रतिधर के चार पुत्र और तीन पुत्रियाँ थी और उनकी दूसरी पत्नी मौरा से केवल एक पुत्र रमापति, बाद में सन्यासी विष्णुपुरी हुए। इससे ऐसा प्रतीत होता है उसने पहली की मृत्यु के बाद दूसरी पत्नी से विवाह किया। मान लीजिए 1440 ईस्वी ई. में रूपिणी की मृत्यु हो गई और 45 वर्ष की आयु में रतिधर ने अपनी दूसरी पत्नी रतिधर ने अपनी दूसरी पत्नी और से शादी की, जिसकी उम्र 10 वर्ष होगी, उसी वर्ष लगभग 1445 में संन्यासी विष्णुपुरी का जन्म हुआ होगा। यदि यह माने, रतिधर पहली पत्नी के रहते ही दूसरी महिला से शादी की और दोनो पत्नियाँ एक साथ रह रही थी।

हम विष्णुपुरी के जन्म की तारीख को अधिक से अधिक 20 साल पीछे ले जा सकते हैं, लेकिन इससे पूर्व का कालनिर्धारण नहीं हो सकता। दरभंगा राजा के संस्थापक महेश ठाकुर, जिनका काल लगभग निर्धारित है, के साथ घनिष्ठ संबंध होने से यह तिथि बहुत आगे-पीछे नहीं दी जा सकता है। अतः स्पष्ट होता है कि संन्यासी विष्णुपुरी का जन्म 15वीं शताब्दी के उतरार्ध में हुआ था।

विष्णुपुरी की माता मौरा की बससे बड़ी बहन गौरा दीनू मिश्र की पहली पत्नी थी। दीनू की दूसरी पत्नी लगभग मौरा की उम्र की हो सकती है। मान ले. कि वह 1430 में पैदा हुई थी, जो मौरा के जन्म के बाद की तारीख है, उसकी 15 साल की उम्र में एक पुत्री हो सकती थी. जिसकी शादी राम से हुई एवं उसे 15 की उम्र में एक पुत्री सुषमा होती है, जिसका विवाह 10 वर्ष की आयु में महाराजा भैरव सिंह नारायण के साथ 1470 में हुआ था। 'तिरहुत के इतिहास' में एस.एन. सिंह द्वारा यह दिखाया गया है कि महाराजा भैरव सिंह अपने भाई महाराजा धीर सिंह, जो 1458 ई. में शासन करने के लिए जाने जाते हैं, के उत्तराधिकारी बने। दूसरी ओर महाराजा भैरव सिंह, उनके पुत्र, महाराजा रामभद्र जो 1495 ई. में शासक थे। इसलिए यह बहुत संभव है कि महाराजा भैरव सिंह ने लगभग 1470 ईस्वी में 50-55 वर्ष की आयु में महादेवी सुषमा से विवाह किया होगा। यह उल्लेख किया जा सकता है कि अपने महान् पूर्ववर्ती महाराज शिव सिंह की तरह महाराज भैरव सिंह की भी पाँच पत्नियाँ थी और उनकी एक पत्नी राम की बहन थी, जिनकी बेटी सुषमा का विवाह 1470 में विलम्ब से हुआ था।

दरभंगा राज के संस्थापक महामहोपाध्याय महाराज महेश ठाकुर के साथ विष्णुपुरी बहुत निकट से संबंधित थे। ये महामहोपाध्याय के पिता के नजदीक के ममेरे भाई थे। हम यह नहीं जानते कि महाराजा महेश ठाकुर का जन्म किस वर्ष हुआ था, लेकिन यह निश्चित है कि उन्होंने 1556 ई. में सम्राट् अकबर से तिरहुत के राजा का फरमान प्राप्त किया था। इससे प्रतीत होता है कि उनका जन्म 1500 ई. से पहले नहीं हुआ था। हलाँकि महेश ठाकुर अपने माता पिता के सबसे छोटे थे। मान लें कि उनका जन्म 60 वर्ष में हुआ

"इसलिए मेरे विचार से 15वीं शताब्दी के 80 के दशक के दौरान 'भक्तिरत्नावली' का बंगला पद्यानुवाद हुआ होगा और इसकी रचना एक दशक पहले उसी शताब्दी के 70 के दशक हुई होगी।"

था। उनके पिता चन्द्रपति चान ठाकुर के नाम से जाने जाते थे। आयु के अनुसार चान ठाकुर के जन्म की तिथि 1440 रखी जा सकती है। दूबे ठाकुर और सोरमा की सबसे छोटी सन्तन तब हुआ जब वह 40 वर्ष की थी। एक सोरमा का जन्म 1400 ई. में हुआ होगा, जो सही लगता है, क्योंकि बड़ा भाई रतिधर का जन्म 1395 में हुआ था। सोरोमा एवं उसके पोते महाराजा महेश ठाकुर के जन्म के बीच सौ वर्षों का अन्तर काफी प्रतीत होता है और रतिधर के काल को पीछे ले जाने का कोई भी प्रयास उनकी बहन सोरमा के काल को भी पीछे कर देगा। इस प्रकार, अपने पौत्र एवं पितामही के काल के बीच अधिक अंतर मुझे संगत नहीं लगता।

विष्णुपुरी के पुत्र का विवाह

विष्णुपुरी के विवाहों के बारे में किसी भी पंजी की पाण्डुलिपि में उल्लेख नहीं मिला है, लेकिन उनके एक पुत्र का उल्लेख मूल पंजियों में है जिसके अनुसार सोदरपुर मूल के वंशज में सुंदर ग्राम में उनका विवाह हुआ। विष्णुपुरी के पुत्र का नाम महादेव है और उन्होंने हेलन की बेटी से विवाह किया। हेलन पाखू की सबसे छोटी बेटी थी। पाखू धीरेश्वर के पुत्र देवेश्वर के द्वितीय पुत्र थे, जो ग्रहेश्वर के कनिष्ठ भ्राता थे। उनके पुत्र हेलू की बेटी, रूपिणी से विष्णुपुरी के पिता रतिधर ने पहली शादी की थी।

जीवन-चरित के अन्य पक्ष

यह समय संभावित है और कालानुक्रम के रूप से माना जा सकता है कि 15वीं शताब्दी के तृतीयांश में किसी समय हुआ होगा। इससे स्पष्ट है कि विष्णुपुरी ने संन्यास ग्रहण करने पूर्व विवाह किया था एवं कम से कम एक पुत्र प्राप्त किया था। विष्णुपुरी के विवाहित जीवन के बारे और कुछ नहीं पता है। जैसे कि उन्होंने कहाँ शादी की थी तथा यह कि महादेव के अतिरिक्त उनकी कोई अन्य सन्तन थी या नहीं। इसलिए, फ्रांसिस बुकानन 1809 में संकलित पूर्णिया रिपोर्ट (पे. 275) में रामचरण मिश्रकृत असमिया 'शंकरचरित' द्वारा समर्थित कथ्य के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है कि विष्णुपुरी ने सन्यास लेने के बाद भी एक विवाह किया था। यदि ऐसा होता, तो संन्यास के बाद हिन्दू विधि और रीति के अनुसार पतित माने गये होते, जैसा कि स्वयं बुकानन ने कहा है और एक पुत्र महादेव विष्णुपुरी के इस संन्यास विवाह के सन्तन नहीं हो सकते थे।

काल-निर्धारण की ओर

अब यह स्पष्ट होना बाकी है कि क्या विष्णुपुरी के लिए तय किया गया समय अन्य ज्ञात स्रोतों से संगत है या नहीं जैसा कि पूर्व में वर्णित है कि वह लौरिय कृष्ण दास से पहले थे जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने भक्तिरत्नावली का बंगाली में पद्यानुवाद किया था। इस लौरिय कृष्ण दास के विषय में राय बहादुर दिनेश चन्द्र सेन ने अपनी पुस्तक 'चैतन्य एण्ड हिज एज' में पृ. 47 पर कहा है कि—"अद्वैत के पिता कुबेर पंडित लउर के राजा के मंत्री थे। वे बाद के वर्षो में अद्वैत के शिष्य बन गए। उन्होंने कृष्णदास का नाम-ग्रहण किया एवं अद्वैत की जीवनी 1409 शक (1487) में लिखी,

जिस समय चैतन्य एक वर्ष से कुछ अधिक के बालक थे।" कृष्णदास ने 'भक्तिरत्नावली' का अनुवाद कब किया? इसके उत्तर में विद्वान् राय बहादुर ने अपनी पहली पुस्तक चैतन्य एण्ड हिज कम्पेनियन्स में पृष्ठ 298 पर (बिना कोई तर्क दिये) कहा है कि **"15वीं शती के आरम्भ में लौरिय कृष्णदास ने विष्णुपुरी कृत भक्तिरत्नावली का बंगला पद्यानुवाद किया होगा।"** और यह विद्वान् राय बहादुर का वही कथन है जिसे हर कोई विष्णुपुरी के काल-निर्धारण पर विचार करते समय उद्धृत करते हैं। मेरे विचार से यह प्रतीत होता है कि विद्वान् राय बहादुर का पूर्व-कथन इतना व्यापक है कि इसके आधार पर कुछ चिह्नित नहीं किया जा सकता और परवर्ती ग्रन्थ में उनका कथन अधिक तथ्यपूर्ण तथा संगत है, जिसका समर्थन उसी राजा के द्वारा के रचित अद्वैताचार्य की जीवनी से भी होता है। इसलिए मेरे विचार से 15वीं शताब्दी के 80 के दशक के दौरान 'भक्तिरत्नावली' का बंगला पद्यानुवाद हुआ होगा और इसकी रचना एक दशक पहले उसी शताब्दी के 70 के दशक हुई होगी। फ्रांसिस बुकानन के शब्दों को ध्यान में रखते हुए कि "विष्णुपुरी ने संन्यास की स्थिति को बहुत असुविधाजनक पाया अपने घर वापस लौटकर यज्ञोपवीत पहन कर युवा पत्नी का ग्रहण किया।" उन्होने विवाह किया और उससे बच्चे हुए; तब हमें यह संगत लगता है कि उन्होंने अपेक्षाकृत कम उम्र में सन्यास ले किया था; मान लें कि संन्यास 40 वें वर्ष या 50 की अवस्था में लिया था। उस दृष्टिकोण से उनके जन्म का वर्ष 1325 ई. के आसपास सिद्ध होती है।

सामाजिक तिरस्कार की भ्रान्त कथाएँ

यद्यपि यह भी मान लें कि फ्रांसिस बुकानन ने यह सब कुछ किसी अन्य विष्णुपुरी के बारे में है अथवा यह मानें कि पूर्णिया जिले के कुछ सामाजिक रूप से किसी गम्भीर आपत्तिजनक कारण से अपमानित व्यक्तियों ने किसी यह कहानी अपनी सफाई देने के लिए गढ़ी, मेरे द्वारा प्राप्त मुख्य निष्कर्ष प्रभावित नहीं होते हैं।

निष्कर्षत: कह सकते हैं 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जन्मे विष्णुपुरी चैतन्यदेव (जिनका जन्म 1486 ई. में हुआ था।) के समकालीन या वृद्धतर हो सकते हैं, वे अवश्य ही उनसे मिले होंगे, लेकिन यह उस समय हुआ होगा जब विष्णुपुरी वृद्ध थे। लेकिन यदि ऐसा है तो बुकानन के कथन को निश्चितरूप से कुछ शर्तों के साथस्वीकार किया जाना चाहिए। माधवेन्द्रपुरी के संबंध यह सत्य प्रतीत होता है कि उनका जन्म 1400 ई में हुआ था, वे विष्णुपुरी को संन्यास धर्म में दीक्षित किये होंगे। जहाँ तक जयधर्म का संबंध है, विष्णुपुरी उनके सम्पर्क में आये होगे और प्रेरित हुए होंगे; साथ ही, जयधर्म एवं माधवेन्द्र पुरी के बीच तीन गुरुओं का समावेश और उनका समसामयिक होना असंभव नहीं है।

निष्कर्ष

हमने विद्वान् परमहंस विष्णुपुरी के बारे में मैथिल ब्राह्मणों की पंजी में जो पाया उससे यहाँ निष्कर्ष प्राप्त किया। विष्णुपुरी की पहचान के बारे में बिल्कुल कोई संदेह नहीं है उसे किसी भी संदेह की छाया से परे निश्चित रूप से मानना चाहिए। जहाँ तक उनके उम्र से संबंधित तथ्य पर पहुँचने के बात है, तो इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि विभिन्न व्यक्तियों की तिथियाँ अधिकतर अनुमानों पर आधारित है, जिसमें त्रुटियाँ हो सकती हैं; फिर भी, हम 15वीं सदी से पहले विष्णुपुरी को नही मान सकते। इसलिए कि हमारे समक्ष उनके परिवार एवं पारिवारिक संबंधों के बारे तथ्यात्मक साक्ष्य है। अत: किसी भी संदेह से परे, 15वीं शताब्दी का वह समय था, जिसके दौरान महान् 'तैरभुक्त संन्यासी 'विष्णुपुरी हुए।

***

एक सांसारिक भाषाकवि : परमहंस विष्णुपुरी

डा. शंकरदेव झा

इतिहास विषयक विशिष्ट शोधकर्ता, कबिलपुर (बाबूसाहेब कॉलोनी), लहेरियासराय, दरभंगा– 846001, मो. 8210912761, 9430639249

परमहंस विष्णुपुरी के सम्बन्ध में अनेक पक्ष आज भी गवेषणीय हैं। उनके लिखे भाषागीत इतने चर्चित हुए कि 17वीं शती में नेपाल के राजा जगज्ज्योतिर्मल्ल ने अपने नाटक हरगौरी विवाह में इसे सम्मिलित किया। वस्तुतः विष्णुपुरी विद्यापति के परवर्ती तथा शंकरदेव और चैतन्यदेव के पूर्व भक्ति-दर्शन के सिद्धान्तकार हुए, जिन्होंने बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा के भक्तिदर्शन को प्रभावित किया। प्रस्तुत लेखक ने ऐसे परमहंस पर सामग्री संकलन हेतु अनके जन्मस्थान की कई यात्राएँ की तथा उस गाँव की वृद्ध-परम्परा से कई तथ्यों का संकलन किया। साथ ही, लिखित स्रोतों के आधार पर पूर्वज्ञात तथा अज्ञात भाषा-पदों और गीतों का भी संकलन किया। लेखक का मन्तव्य है कि विष्णुपुरी ने कम से कम दो कीर्तनियाँ नाटकों की रचना की होगी, जिनके छिटफुट गीत हमें विभिन्न स्रोतों से मिले हैं। आवश्यकता है कि इस दिशा में और कार्य किया जाये। प्राथमिक स्रोतों से प्राप्त यह शोध आलेख इस दिशा में शोध-आधार का कार्य करेगा।

समन्वयवादी पंचदेवापासना की परम्परा में विश्वास रखने वाली मिथिला मध्यकालीन साम्प्रदायिक भक्ति आन्दोलन से यद्यपि सर्वथा अप्रभावित रही है, लेकिन भक्ति-आन्दोलन का मार्ग-निर्देशन करने और उन्हें सैद्धान्तिक आधार प्रदान करने में मिथिला ने जो अपनी भूमिका निभायी है, उसका सम्यक् विश्लेषण-विवेचन होना आज भी प्रतीक्षित है।

जयदेव के गीतगोविन्द से मधुर भाव का जो स्रोत प्रस्फुटित हुआ उसे अभिनव जयदेव विद्यापति ने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। 'देसिल वयना' अर्थात् मैथिली में रचित विद्यापति के अजस्र राधा-कृष्णविषयक मधुर गीतों ने पश्चिम में व्रज-वृन्दावन से लेकर पूर्व में असम-उड़ीसा-बंगाल तक ऐसी धूम मचायी कि इसने साहित्य और अध्यात्म की धारा बदल डाली। ब्रज की भूमि पर जन्म लेने वाले विष्णु के अवतार भगवान् कृष्ण और उनकी प्रेयसी के रूप में अवतरित पराशक्ति राधा की श्रृंगारिक लीलों से सम्बद्ध विद्यापति के मधुर पद जब कीर्तनियाँ नाट्य-मंडलियों एवं कथकों के माध्यमसे जब पूर्वांचल में पहुँचे तो वहाँ के लोग इसे सुनकर अभिभूत हो उठे। विद्यापति के ये पद जब चैतन्यदेव के कानों तक पहुँचे तो उनमें एक नूतन आध्यात्मिक चेतना का विकास हुआ और अनायास ही एक कृष्णाश्रयी वैष्णव भक्ति आन्दोलन की नींव पड़ गयी। इस भक्त आन्दोलन की

मूल भावना राधाभाव की थी अर्थात् स्वयं को राधा मानकर अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति सर्वस्व समर्पण के द्वारा ही उन्हें प्राप्त किया जा सकता है, यह भाव बलवान् हुआ। फलतः विद्यापति क जा पद मिथिला में श्रृंगारिक समझे जाते थे, वे बंगाल की वैष्णव मंडलियों में भक्ति-पद के रूप में गाये जाने लगे।

चैतन्य प्रवर्तित कृष्णभक्ति की यह धारा मधुराभक्ति के नाम से भी जानी गयी जिसकी प्रेरणा उन्हें विद्यापति के पदों से प्राप्त हुई थी। बंगाल में विद्यापति की प्रतिष्ठा एक वैष्णव भक्त कवि के रूप में स्थापित हुई।[1]

विद्यापति के पदों से अगर चैतन्य को राधाभाव से सिक्त मधुरा भक्ति की प्रेरणा प्राप्त हुई तो उनके द्वारा प्रवर्तित इस वैष्णव भक्ति आन्दोलन को दार्शनिक और सैद्धान्तिक आधार प्रदान करने का श्रेय जिस मैथिल महापुरुष को प्राप्त है, वे हैं 'तैरभुक्त' परमहंस विष्णुपुरी। विद्यापति के उत्तर समकालिक वैष्णव सन्त विष्णुपुरी ने त्रयोदश विरचन युक्त भक्तरत्नावली नामक ग्रन्थ की रचना कर बंगाल-असम-उड़ीसा नें वैष्णव धर्म को लोकप्रिय बनाया। द्वैत वेदान्तानुयायी वैष्णव सन्त और आचार्य के रूप में विष्णुपुरी की ख्याति बंगाल से बाहर भी देश के विभिन्न भागों में रही है। नाभास्वामी,[2] प्रियादास[3]-जैसे मध्यकालीन सन्तों ने अपनी कृतियों में विष्णुपुरी की प्रशस्ति की है। आधुनिक काल के कतिपय बंगाली विद्वानों ने भी विष्णुपुरी के सम्बन्ध में काफी कुछ लिखा है. जिनके कारण उनके जीवन और व्यक्तित्व के कई पक्ष उजागर हुए हैं, तो उनके स्थितिकाल को लेकर मतभेद भी उभड़े हैं। प्रो. रमानाथ झा[4] एवं प्रो. रामदेव झा[5]-जैसे मैथिल विद्वानों ने भी विष्णुपुरी के संबंध में बहुत कुछ लिखा है जिसके कारण इनसे संबद्ध कतिपय अनभिज्ञात तथ्य उजागर हुए हैं। इन दोनों विद्वानों के शोधों के आधार पर यह निश्चित हो सका है कि महाकवि विद्यापति (1350-1450) के उत्तर एवं चैतन्य (18 फरवरी, 1486 से 14 जून, 1534ई.) के पूर्वसमकालिक विष्णुपुरी का जन्मस्थान वर्तमान दरभंगा जिलान्तर्गत प्रसिद्ध तरौनी गाँव था। करमहा-तरौनी मूल के मैथिल ब्राह्मण विष्णुपुरी के पिता का नाम रतिधर, माता का नाम मौरा एवं पितामह का नाम श्रीधर था। संन्यास ग्रहण करने से पूर्व उनका गृहस्थ नाम रमापति था। विष्णुपुरी संस्कृत भाषा और विद्या के मर्मज्ञ आचार्य ही नहीं, 'देसिल वयना' के सरस-मधुर गीतकार भी थे। कृष्णाश्रयी वैष्णव सन्त विष्णुपुरी ने कृष्ण संबन्धी मधुर पदों की रचना तो की ही थी, प्रत्युत इनके द्वारा रचित शिवविषयक गीत कुछ ललित मैथिली पदों के मिलने से इनके सन्त-व्यक्तित्व पर नये शिरे से विचार करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

वस्तुतः यह आश्चर्य की विषय है कि मध्यकालीन वैष्णव भक्ति-आन्दोलन में जिस तैरभुक्त परमहंस विष्णुपुरी के अतिविशिष्ट आचार्य की पदवी प्राप्त हो रही हो, उनके जीवन, व्यक्तित्व और कर्तृत्व से तीरभुक्ति के निवासी ही क्यों आजतक अपरिचित बवे रहे? मिथिला की विभूति परम्परा में इनका नाम लेने से

1 विद्यापति गोष्ठी, सुकुमार सेन, (हिन्दी अनुवाद– शैलेन्द्रमोहन झा), मिथिला रिसर्च सोसायटी, दरभंगा, 1966, पृ. 5

2 नाभास्वामी कृत भक्तमाल, ठाकुर प्रसाद एंड सन्स, बुकसेलर, कचौड़ीगली वाराणसी, पृ. 268.

3 उपर्युक्त, पृ. 268.

4 परमहंस विष्णुपुरी : हिज आइडेंटिटी एंड एज, रमानाथ झा, पटना युनिवर्सिटी जॉर्नल, वोल्यूम 1, पार्ट 2, जनवरी 1945, पृ. 7-20 (इस आलेख का हिन्दी अनुवाद इस पत्रिका में प्रकाशित है।– संपादक)

5 परमहंस विष्णुपुरी ओ हुनक शिवगीत, रामदेव झा, मिथिला भारती, अंक 2, भाग 1-4, 1970ई., पृ. 136-144.

क्यों विद्वज्जन कतराते रहे? जिस तरौनी में इनका जन्म हुआ था, उसी तरौनी के निवासी 'मिथिलातत्त्वविमर्श'-जैसे इतिहास ग्रन्थ के लेखक म.म. परमेश्वर झा ने अपनी पुस्तक में मात्र विष्णुपुरी डीह[6] की चर्चा करते हुए अपनी कलम को इस तरह मोड़ दिया है, मानो किसी संकोच ने उन्हें घेर लिया हो। दरभंगा से सुदूर पूर्व पूर्णियाँ में रहकर 1809-10 में पूर्णियाँ रिपोर्ट तैयार करने वाले अंगरेज सर्वेक्षक फ्रांसिस बुकानन को विष्णुपुरी के सम्बन्ध में इतनी सूचना मिल सकी-

"One Mithila Brahman about 300 years ago attempted to dedicate himself to god and at Benares went through the ceremonies that entitled him to become a Dandi but soon after he found this state very inconvenient and the flesh prevailing he returned to his house resumed his thread and took a young wife His descendants have been degraded are called Vishnupuris after his name and can only intermarry with Pujaris or such people Since that time no one has made an attempt at such purity."[7]

बुकानन को उपर्यक्त सूचना ब्राह्मण द्वारा संन्यास ग्रहण किये जाने की घटना के बाद घटित किसी सामाजिक दुर्घटना की ओर संकेतित करती है। प्रो. रमानाथ झा ने इस सूचना को मनगढन्त माना है, और कहा है कि हो सकता है कि उस सूचक ने किसी गम्भीर सामाजिक अपराध के कारण सामाजिक अवहेलना को छिपाने के लिए संन्यास-ग्रहण की झूठी कहानी गढ़ी हो।

सन् 1992 ई. में इस पंक्ति के लेखक को सौभाग्यवश नई दिल्ली में असमी के प्रख्यात साहित्यकार नवकान्त बरुआ के साथ एक सप्ताह का समय बिताने का सौभाग्य मिला। उस क्रम में मिथिला और असम के प्राचीन सम्बन्धों को लेकर चर्चाएँ हुई। बातचीत के दौरान जब विष्णुपुरी का उल्लेख हुआ तो बरुआ महोदय उनका नाम सुनकर अभिभूत हो उठे। उन्होंने बताया कि असम की वैष्णव परम्परा में विष्णुपुरी को परम आचार्य की प्रतिष्ठा प्राप्त है। उनके द्वारा ब्रजबूलि में रचित भक्तिपद असम के सत्रों में गाये जाते हैं। बरुआ महोदय ने इस पंक्ति के लेखक को दो दायित्व सौंपा, प्रथम विष्णुपुरी और द्वितीय श्रीमंत शंकरदेव को भागवत सुनानेवाले तिरहुत निवासी जगदीश मिश्र के जन्मस्थान एवं मिथिला में उनसे जुड़ी अन्य सूचनाएँ उपलब्ध कराना। उनके आग्रह को गंभीरतापूर्वक लेते हुए इस पंक्ति के लेखक ने 1993-94 के मध्य एकाधिक बार तरौनी की यात्रा कर वहाँ की वृद्ध परम्परा से विष्णुपुरी के सम्बन्ध में बहुत सारी जानकारियाँ प्राप्त की। श्रुति-परम्परा से प्राप्त उन सूचनाओं को यहाँ प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा।

जन्मग्राम में परम्पराप्राप्त कथाएँ

विष्णुपुरी तरौनी गाँव के टोले विश्वनाथ पुर (पछबारी टोला) के निवासी थे। इनके वंश में संस्कृत विद्या की समृद्ध परम्परा थी, उसी परम्परा के अनुरूप ये भी विद्या में निष्णात थे। एक कुलीन घर की कन्या से इनका विवाह हुआ। पत्नी जब प्रथम गर्भ की स्थिति में थी, तब उच्च अध्ययन के लिए इन्हें काशी भेजा गया। वहाँ ये किसी शैव दशनामी संन्यासी के सम्पर्क में आये और उनसे प्रभावित होकर इन्होंने शिखा-सूत्र का परित्याग कर दण्ड-कमण्डलु धारण कर संन्यास ले

6. मिथिलातत्त्वविमर्श, परमेश्वर झा, श्रीपरमेश्वर पुस्तकालय, तरौनी, दरभंगा, 1949, पृ. 165. (पूर्वार्द्ध)।
7. एन एकाउंट ऑफ द डिस्ट्रिक्ट पूर्णियाँ इन 1809-10, फ्रांसिस बुकानन, बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, पटना, 1928, पृ. 275-76.

लिया। काशी-जैसी पुरी में निवास करने के कारण इनका नवीन नाम विष्णुपुरी हुआ।

भिक्षा हेतु गाँव आने की कथा

अपने उस शैव गुरु के साथ रहते हुए इन्होंने तन्त्र और योग की भी शिक्षा ली तथा विभिन्न शैव-तीर्थों का भ्रमण किया। इस प्रकार, अपने परिवार से दूर विष्णुपुरी के जीवन के ग्यारह वर्ष बीत गये। बारह वर्ष बीत जाने पर धर्मशास्त्र के अनुसार इनका श्राद्ध कर दिया जाता अतः इनके गुरु ने इन्हें परिवार से मिलने तथा जीवित होने की सूचना देते हुए भिक्षा लेकर आने का आदेश किया, ताकि वे इन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित कर सकें।

गाँव में संन्यास-ग्रहण पर शास्त्रार्थ

गुरु के आदेश पर अनिच्छापूर्वक भी वे अपने पैतृक गाँव पहुँचे, जहाँ उन्होंने सीधे घर पर न कर एक बरगद के वृक्ष के नीचे अपना आसन जमाया। एक जटाजूट-मण्डित संन्यासी को देखक लोगों ने कौतूहलवश बलियासय मूल के प्रखर विद्वान् म.म. शेष उपाध्याय से जाकर इसकी सूचना दी। शेष उपाध्याय ने स्वयं जाकर उनका परिचय प्राप्त किया और उन्हें पहचान लिया। शेष उपाध्याय ने संन्यास-ग्रहण की वैधता पर प्रश्न पूछा तो दोनों में शास्त्रार्थ होने लगा। इस शास्त्रार्थ में पं. विष्णुदत्त उपाध्याय मध्यस्थ बने।

कहा जाता है कि आठ दिनों तक यह शास्त्रार्थ चला और अंततः शेष उपाध्याय के तर्कों से विष्णुपुरीजी निरुत्तर हो गये। शर्त के अनुरूप इनका पुनः यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और पुनः पूर्व पत्नी से ही उनका विवाह कराया गया। किन्तु गृहस्थ जीवन में आने से पूर्व उन्होंने अपने वस्त्र और दण्ड-कमंडल के छिपाकर रख दिया था।

पुनः गार्हस्थ्य में प्रवेश, सामाजिक तिरस्कार

विष्णुपुरी के काशी जाने से पूर्व जो गर्भस्थ पुत्र था वह अब बड़ा हो चुका था। इस द्वितीय गृहस्थ-प्रवेश में भी उन्हें एक पुत्र हुआ। लेकिन इतने दिनों में विष्णुपुरीजी ने यह अनुभव किया कि उनकी पत्नी अपने ज्येष्ठ पुत्र को पिता तथा छोटे भाई से दूर रखने का प्रयास कर कर रही है, यहाँ तक कि भोजन में भी पंक्तिभेद कर रही है। यह पंक्ति भेद का नुभव उन्होंने गाँव के भोज में किया। समाज के कुछ अनपढ़ लोग विष्णुपीजी का मर्मभेदी उपहास भी करने लगे। उन्हें लगा कि उनका समाज तथा उनका परिवार भी उन्हें स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है।

गृह-परित्याग तथा पत्नी को दिशानिर्देश

परिणामतः उनका वैराग्य फिर बलवान् हुआ और वे छिपाकर रखे गये दण्ड-कमण्डलु लेकर पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े। कुछ दूर जाने पर जब वे एक पीपल वृक्ष के नीचे बैठे तो उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी छोटे पुत्र को गोद में लेकर रोती बिलखती आ रही है। पत्नी उन्हें किसी धर्मसंकट में न डाल दे इस आशंका से उन्होंने अपना दण्ड उठाकर चारों ओर घुमाया। कहा जाता है कि उस पीपल के चारों ओर जप -पूरित गहरी खाई बन गयी, जिसे उनकी पत्नी पार न कर सकी और वहीं असहाय होकर फूट-फूट कर रोने लगी। ग्रामीण इस धारा का अवशेष आज भी दिखाते हैं और उसे घोघरा धार कहते हैं।

विष्णुपुरीजी के द्वारा पत्नी को लौट जाने के लिए बार-बार कहने पर भी जब वह वहीं बिलखती रही तो उन्होंने पीपल का एक पत्ता लिया और उसी जल में उँगली डुबोकर उससे यह पद लिखा-

घुरि कामिनि जाइअ निज गेहे।
पुनि की जोड़िअ टुटल सिनेहे॥

विष्णुपुरी भन शङ्कर दासे।
सपनेहुँ जनि केओ लेओ संन्यासे॥

उस पत्ता को उसने पत्नी की ओर बहा दिया। उसे पढ़कर पत्नी ने उनसे पूछा कि इस दूसरे पुत्र का क्या होगा? विष्णुपुरी ने पुनः दूसरे पत्ते पर संदेश लिखा-

गहथु अपत्य सदाशिव चरणा।
तोंहे भामिनि होअह हर सरणा॥
सहल विष्णुपुरी कत उपहासे।
गौरी शम्भु पुराबथु आसे॥

पत्नी को उत्तर मिल गया था। वह घर की ओर लौटने लगी तो विष्णुपुरी ने पत्नी से कहा कि ये दोनों पत्ते विष्णुदत्त उपाध्याय को सौंपे दिये जायें, जिन्होंने शास्त्रार्थ की मध्यस्थता कर संन्यास के विरुद्ध अपनी व्यवस्था दी थी। गाँव के बुजुर्ग बताते हैं कि विष्णुदत्त उपाध्याय के वंशज जयनंदन झा के घर ये दोनों पत्ते हाल के वर्षों तक थे।

परिवार की दुर्गति

गाँव की जनश्रुति परम्परा से यह भी ज्ञात हुआ कि विष्णुपुरी के ज्येष्ठ पुत्र की कुलीनता तो बची रही किन्तु कनिष्ठ को समाज में हेय दृष्टि से देखा गया। कालान्तर में वे और उनके वंशज तापस या पंडा (मैथिल ब्राह्मणों का एक शैव वर्ग जो शिवमन्दिर की सम्पत्ति और प्रसाद ग्रहण करता हो। समाज में उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है।) के रूप में संबोधित हुए, जिन्होंने देवघर समेत अन्य शैव तीर्थों में पंडा बन गये।

कहा जाता है कि इस घटना लोगों ग्राम-कलंक के रूप में देखा तथा वे लोग विष्णुपुरी का नाम लेने से भी कतराने लगे। इस वंश के सभी परिवार धीरे-धीरे उस गाँव से पलायन कर गये। इन मौखिक स्रोतों से जो जानकारी मिलती है, उससे फ्रांसिस बुकानन की पूर्वोक् टिप्पणी भी मेल खाती है तथा इसका भी उत्तर मिल जाता है कि म.म. परमेश्वर झा ने अपनी पुस्तक में विष्णुपुरी चर्चा क्यों नहीं की।

शिलानाथ महादेव की स्थापना

कहा जाता है कि पुनः संन्यास-ग्रहण कर वे जयनगर के पास कमला नदी के तट पर पहुँचे और आरूढपतितत्व का शास्त्रानुसार प्रायश्चित्त करने के लिए उन्होंने जलसमाधि लेने का संकल्प किया। ज्योंही उन्होंने कमला नदी में डुबकी लगायी कि एक शिला उनके पैरों में टकरायी। उन्होंने शिला को हटाने का प्रयास किया तो उन्हें जल के अंदर ही भगवान् शंकर के दर्शन हुए। मान्यता है कि जल के अंदर ही भगवान् ने उन्हें आत्महत्या दैसे पाप से रोका तथा पूर्व पापों का प्रायश्चित्त के लिए विष्णुमंत्र देकर भगवान् विष्णु के शरणापन्न होने की आज्ञा दी। आराध्य के आदेश से उन्होंने उस प्रस्तर शिला को निकाल कर उसी के तट पर शिलानाथ के नाम से विधिवत् स्थापना की और अपनी साधना भूमि काशी लौट आये।

काशी में विष्णु की उपासना

काशी आकर विष्णुपुरी ने किसी एकान्त स्थान में विष्णु की साधना की। इसी क्रम में भागवत-पुराण का पारायण करते हुए उन्हें ईश्वर की प्राप्ति तथा मुक्ति हेतु एक नवीन मार्ग का दर्शन हुआ। उन्होंने यहीं पर श्रीद्भागवत से भक्ति-सम्बन्धी सार-श्लोकों का संग्रह कर इसे 'भक्तिरत्नावली' नाम दिया तथा उसकी कान्तिमाला व्याख्या की। इस ग्रन्थ में प्रत्येक विरचन के अंत में उन्होंने अपना परिचय 'तैरभुक्त परमहंस' के रूप में दिया।

जगन्नाथ पुरी की यात्रा

भक्ति के नव अंगों की दार्शनिक विवेचना से संबलित इस ग्रन्थ पर भगवान् पुरुषोत्तम जगन्नाथ की संस्तुति प्राप्त करने के लिए वे जगन्नाथ पुरी गये और वहाँ उनके द्वार पर वह पुस्तक रख दी। उन्होंने भगवान् जगन्नाथ से दो प्रश्न किया—

प्रथम—क्या इस ग्रन्थ में प्रतिपादित ईश्वर भक्ति का मार्ग समुचित है?

द्वितीय—मुझे अपने पापों से मुक्ति मिलेगी या नहीं?

विष्णुपुरीजी के जन्मग्राम में पारम्परिक मान्यता है कि भगवान् ने प्रधान पंडा को स्वप्न दिया और प्रतिदिन मन्दिर के द्वारा पर इस ग्रन्थ के पारायण का निर्देश दिया। तथा विष्णुपुरी को काशी में रहकर अपने मोक्ष एवं मानव कल्याण हेतु भक्ति-दर्शन का प्रचार करने का आदेश किया। तदनुसार विष्णुपुरी काशी लौटकर ईश्वरीय आदेश का पालन जी-जान से करने लगे। ईश्वर-प्रेम में भ्रमण कर रहे चैतन्यदेव को जब विष्णुपुरी के ग्रन्थ के सम्बन्ध में पता चला तो वे इसे पाने के लिए व्यग्र हो गये। उनके आग्रह पर विष्णुपुरीजी ने भक्तिरत्नावली की प्रति उन्हें भी भेज दी। इस ग्रन्थ के पारायण से न केवल उनकी जिज्ञासा शान्त हुई बल्कि भक्ति का एक सहज दर्शन भी उन्हें मिल गया, जिसकी उन्हें खोज थी।[8]

परमहंस के भाषागीत

विष्णुपुरी संस्कृतज्ञ थे। उन्होंने संस्कृत में भक्तिरत्नावली की कान्तिमाला व्याख्या लिखी थी, उनका अधिकांश समय मिथिला से बाहर ही फिर भी वे मातृभाषा को कभी नहीं भूले हैं— इसका प्रमाण है मैथिली में रचित उनके अनेक भक्तिपरक सरस गीत। सन्त विष्णुपुरी के इन पदों की जानकारी तब मिली जब नेपाल से प्राप्त विद्यापति की पदावली में उनका एक पद पाया गया। पश्चात् 1961ई. में कवीश्वर चंदा झा के द्वारा संकलित गीतों के आधार पर 1961 ई. में कविशेखर बदरीनाथ झा के सम्पादन में मैथिली-गीत-रत्नावली प्रकाशित हुई। इस संग्रह में भी विष्णुपुरी का कृष्णजन्मविषयक एक पद है। एक कृष्णाश्रयी वैष्णवसन्त द्वारा कृष्णविषयक पदों की रचना करना स्वाभाविक ही माना जायेगा। लेकिन कृष्ण से इतर शिव विषयक पदों की भी रचना विष्णुपुरीजी ने की थी। प्रो. रामदेव झा 1969 ई. में कैंब्रिज विश्वविद्यालय से शोध करते हुए नेपाल के मल्लवंशीय शासक राजा जगज्ज्योतिर्मल्ल (1613-1637ई.) रचित शिव-विषयक मैथिली नाटक हरगौरीविवाह की पाण्डुलिपि की खोज की। इस नाटक का विवेचन करने पर उन्हें विद्यापति समेत विभिन्न मध्यकालीन कवियों के शिवविषयक गीत मिले, जिन्हें नाटककार ने प्रसंगानुसार योजित कर नाटक की रचना की थी। इनमें से तीन विष्णुपुरी के गीत हैं।

सम्प्रदाय से ऊपर उठे एक गृहस्थ भक्तकवि

विष्णुपुरी के इन पाँच गीतों ते पर्यालोचन से स्पष्ट होता है कि वे साम्प्रदायिक भक्त कवि नहीं थे। उनके संन्यास जीवन का प्रथम भाग शैव और द्वितीय भाग वैष्णव भावापन्न रहा। लेकिन उनका कवि व्यक्तित्व उनके सन्त व्यक्तित्व से सर्वथा भिन्न विद्यापति की तरह एक समन्वयवादी मैथिल गृहस्थ की तरह था। इनके शिवगीतों में एक सामान्य गृहस्थ मैथिल की भक्तिभावना प्रस्फुटित हुई है, न कि एक वैरागी सन्त का आत्मनिवेदन शरणागति भाव, मोक्षकामना या निर्वेद का भाव। शिव के ऊपर हाथ कांकण बाँध बूढ़ महेशे जैसा कटाक्ष एक मैथिल गृहस्थ ही कर सकता है।

नन्दापट्टी से प्राप्त पाण्डुलिपि

विष्णुपुरी रचित श्रीकृष्णविषयक मात्र दो गीत प्रकाश में आये थे, लेकिन इधर इनके तीन अन्य गीत भी प्राचीन पाण्डुलिपि से मिली है। इस हस्तलेख की उपलब्धि नंदापट्टी (बहेड़ी, दरभंगा) निवासी दरभंगा-

8 तरौनी और उसके आसपास के क्षेत्रों में वृद्ध-परम्परा से चली आ रही जनश्रुतियों, किंवदन्तियों एवं ऐतिह्यों के आधार विष्णुपुरी का यह वृत्तान्त है। यद्यपि कहीं कहीं लिखित साक्ष्यों से यह मेल नहीं खाता है, फिर भी उनके जन्मस्थल पर प्राप्त कथा के रूप में महत्त्वपूर्ण है।

नरेश महेश्वर सिंह द्वारा सम्मानित उन्नीसवीं शती के ज्योतिषी तथा वैयाकरण भवदत्त झा के परिवार से यह पाण्डुलिपि मिली है। इसमें विद्यापति एवं उनकी परम्परा के कतिपय कवियों के गीत हैं। इस हस्तलेख में विष्णुपुरी के जो तीन गीत मिले हैं, इनमें से एक सर्वथा नवीन है जबकि शेष दो गीत नेपाल के स्रोत भी मिले थे किन्तु उसमें भनिता नहीं रहने के कारण उत गीत संग्रह में पदसंख्या 86 एवं 92 के कवि की सूचना प्राप्त नहीं हो सकी थी। नंदापट्टी से प्राप्त इस हस्तलेख में वे ही दोनों गीत कुछ अधिक पंक्ति तथा भनिता के साथ मिले जिसके कारण कवि के रूप में विष्णुपुरी पहचान हो सकी है। विष्णुपुरी के कवि व्यक्तित्व का आकलन करने के लिए उनके द्वारा रचित सभी उपलब्ध गीतों तो यहाँ विषयानुरूप प्रस्तुत किया जा रहा है-

शिवविषयक पद

भल शिव शंकर मोरा, बुझल जतीपन तोरा
अति गोरा लो॥
तपोबल अछल तपसी, थिकह सकल गुण रसी
शिर शशी लो॥
जब तप सबे दुर गेला, रमणि रंग मने देला
इ की भेला लो॥
काँधहि रुण्डेरि माला, पहिरण बाघेरि छाला
फणि माला लो॥
'विष्णुपुरी' शिव दासे, परिपूरथु मोर आसे
दिग वासे लो॥[9]

यह गीत मैना की उक्ति है। अपनी योगसाधना और जप-तप को भुलाकर पार्वती के साथ रंग-रस करनेवाले शिव की भर्त्सना करती है।

(2)

तपसिया तोरे तपे केओ ने भिखारी
पवलह राजकुमारी॥ध्रुव॥
तपसिया तोरे मुख हेरि हेरि
हँसे तोरा मुख कत रूप बसे॥
जटा जूट फोट गोट चन्दा,
जानि जानल धूरि फंदा॥
फूल तोरल मए आसे,
सेओ भेल बसहक घासे॥
'विष्णुपुरी' हेन भाने,
ओहे जोगि जगत किसाने॥[10]

यह गीत गौरी की उक्ति है। इसमें मधुर रोष और अनुरोध दोनों हैं। तपस्वी शिव की जिसने भी आराधना की उसकी निर्धनता दूर हो गयी। स्वयं को भी उन्हें पत्नी के रूप में राजकन्या मिली। लेकिन तपस्या कर शिव को पानेवाली गौरी को क्या मिला?

(3)

भमि भमि पठे गोरि देह उपदेशे
माइ हे, कि देव मनाउब रूसल महेशे॥
खाट तुरैया सेज हुनि ने सोहाबए।
जतहु कतहु बाघे छाल ओछाबए॥
क्षीर कपूर पान हुनि ने सोहाबे।
आक धुतुर फुल तहिन भल भावे॥
'विष्णुपुरी' कह हित उपदेशे।
हाथ कांकण बांध बूढ़ महेशे॥[11]

यह गौरी की उक्ति है। वह लोगों से पूछ रही है कि रूठे महेश को कैसे मनायें, क्योंकि महेश को अच्छी चीज तो भाती है नहीं है। उन्हें तो सुन्दर शय्या को छोड़ कहीं भी बाघ की छाल बिछा लेते हैं। उन्हें दूध, कपूर पाम अच्छा नहीं लगता पर आक और धतूरे का फूल अच्छा लगता है। कवि कहते हैं कि वृद्धावस्थामें विवाह का कंगन पहनने वाले महेश के साथ उन्हें निर्वाह तो करना ही पड़ेगा।

9. हरगौरी विवाह नाटक, जगज्ज्योतिर्मल्ल, रामदेव झा (सं.), मिथिला रिसर्च सोसायटी, दरभंगा, 1970, पृ. 37.
10 उपर्युक्त, पृ. 71.
11 तदेव, पृ. 76.

कृष्णविषयक पद

हे सखि! हे सखि! कहियो न जाहे।
नंदक अँगना कइसन उछाहे॥
नन्द नंदन त्रिभुवन सारे।
यशोदेँ पाओल ननुञे कुमारे॥
मन भेल हरखित देखि तनु रूपे।
जनि भेल उदित दीप अँधकूपे॥
आस लता पल्लव जनि देला।
मेदिनि सुर तरु आँकुर भेला॥
'विष्णुपुरी' कह सुनह गोआरी।
परम जोति अवतरल मुरारी॥[12]

उपर्युक्त गीत में श्रीकृष्ण के जन्म के उल्लास का वर्णन किया गया है।

(5)

प्रथम वएस जत उपजल नेह।
एक परान एक जनि देह॥
तइसन पेम जदि बिसरह मोर।
काठहु चाहि कठिन हिअ तोर॥ ध्रु.॥
ए प्रभु ठाकुर न तेजह नारि।
तोह बिन लागब कओन गोहारि॥
सुपुरुस चिन्हिअ एहे परिनाम।
जैसन प्रथम तैसन अवसान॥
टुटल पेम नहि लाग एक ठाम।
'विष्णुपुरी' कह बुझसि विराम॥[13]

उपर्युक्त गीत निष्ठुर नायक के प्रति नायिका का उलाहना है। प्रथम पुरातन प्रेम को भुला देनेवाले नायक को नायिका उसके कर्तव्यों की याद दिलाती है। कवि कहते हैं कि खंडित प्रेम कभी एकजुट नहीं हो पाता है।

(6)

वदन सरोरुह नयन सुछन्द।
जनि दुहु खंजन लागल दंद॥
कि कहब चिकुर सहज मसि भार।
अरुण पीबि जनु बादु अन्धार॥
परिणत बिम्ब अधर पुट जोति।
तथि जनि दसन पाँति गजमोति॥
कतए कुम्भ सम कुच जुग जोड़।
शशिमुखि पसरलि सगर इजोर॥
मणिमाला मुकुता गर साज।
तुअ प्रियतम धनि मिलबहिँ आज॥
भल भएल संुदरि तनु निरमान।
कत दिन लागल छल पँचबान॥
'विष्णुपुरी' हरि एक अधार।
भजह सुलोचनि नंद कुमार॥[14]

उपर्युक्त गीत में आभिसारिका राधा के रूप-लावण्य और उनके शृंगार का वर्णन किया गया है।

(7)

खण्डित सूत जुड़ए पुनि नाहि।
जोड़तहुँ जतन गँठि पड़ि जाहि॥
ए सखि, मरम बुझसि नहि काहि॥ ध्रु.॥
दुइ आधा आखर थिअ पेम।
अनुपम धन नहि करु बर नेम॥
तिले तिले जोड़ह बाढ़ए कोष।
वंचक तस्कर देखइत रोष॥
नव शिशु अइसन राखु जोगाए।
डाहि पड़ोसिनि देखि सिहाए॥

12 मैथिलीगीतरत्नावली, बदरीनाथ झा (सं.), ग्रन्थालय प्रकाशन, दरभंगा, 1961ई. गीत संख्या 7.

13 साँग्स ऑफ विद्यापति, सुभद्र झा (सं.), मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1954, एपेंडिक्स 'ए', पद संख्या 4

14 नंदापट्टी (बहेड़ी, दरभंगा) से प्राप्त प्राचीन हस्तलेख में उद्धृत; मैथिली प्राचीन गीतावली, सुरेन्द्र झा सुमन एवं रामदेव झा (सं.), मैथिली अकादमी, पटना, 1977, पृ. 108, गीत संख्या 140.

ससन उषण कुम्हलए जनि फूल।
अइसन तन्नुक पेमक मूल॥
दुहु कर बिलहए घटए न पार।
रहए अछुन तुअ पेम भँड़ार॥
'विष्णुपुरी' कह विरहिन नारि।
तुअ गुन लुबुधल औत मुरारि॥[15]

उक्त गीत में राधा के प्रति सखी का उपदेश है। कृष्ण के व्यवहार से क्षुब्ध राधा उनसे अपने सारे प्रेम-संबंध तोड़ लेने का निश्चय करती है। ऐसी स्थिति में सखी राधा को प्रेम की महत्ता और उसकी कोमलता का ज्ञान देती हुई कहती है कि मात्र ढाइ अक्षर का प्रेम एक अनुपम धन है। जिस प्रकार धागा टूट जाने पर जुड़ नहीं पाता है, यदि यत्नपूर्वक जोड़ा भी जाये तो उसमें गाँठें पड़ जाती हैं। प्रेम का सूत्र भी ऐसा ही कोमल होता है। कवि राधा को इतना रोष न करने की सलाह देती हुई कहती है कि तुम्हारे गुणों से आकृष्ट मुरारी फिर तुम्हारी ओर खिंचे चले आयेंगे।

(8)

रोषेँ रूसलि सखि, सबे रस बीमुखि,
घर सओ बाहर गेली॥
आनलें आबए पुनु, धरनि लोटाबए तनु
देहरि देशान्तर भेली॥
ए हरि हमहुँ ताहि, पलटि न अइली राहि,
आबे भेल हृदय उदासे॥
कुलिश कठोर हिय, उपेखल निअ पिय,
सबहु मगन भेल आसे॥
जास मान एक धन, महघ तरुनि जन,
से थिक त्रिभुवन सारे॥
अटुट टुटल पेम तसु किसलय जेम,
वचन खड़ पर धारे॥
उचित न एत रोष, सबे करमहि दोष,
बड़ घातक परहारे॥
'विष्णुपुरी' भन, सुनु विरहिन जन,
गहु पद नन्द कुमारे॥[16]

उपर्युक्त गीत दूती की उक्ति है। दूती आकर कृष्ण को बताती है कि उन्होंने जिस प्रकार से राधा के प्रेम की उपेक्षा की है उसके कारण वह इतना रुष्ट है कि उसने अपना घर-द्वार सबकुछ छोड़ दिया है। उसने अपना हृदय कठोर बना लिया है और कृष्ण केसाथ अपने अटूट प्रेम को सदा के लिए तोड़ लिया है। कवि कृष्ण विरह में उन्मत्त राधा को स्वयं पर नियंत्रण कर नंदकुमार का चरण गहने का उपदेश करते हैं।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि विष्णुपुरी के गीतों के अवलोकन से स्पष्ट है कि यह किसी वैरागी सन्त कवि की रचना नहीं अपितु किसी सांसारिक गृहस्थ की अनुभूतियाँ हैं। जीवन के कटु-मधु, संगति-विसंगतियों का हृदयंगम चित्रण जिस प्रकार से इनके गीतों में देखने को मिलता है वह सोचने के लिए विवश करदेता है कि जीवन के किस कालखण्ड में कवि ने इन गीतों की रचना की होगी?

शिव एवं विष्णु की उपासना का समन्वय

मिथिला की वृद्ध परम्परा से प्राप्त विष्णुपुरी के उतार-चढ़ाव भरे जीवन की जिस कथा का पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, उससे यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने संन्यास जीवन के शैव एवं वैष्णव इन दो कालखण्डों के बीच उन्होंने कुछ वर्ष गार्हस्थ्य-जीवन जिया था। वह भी, एक ऐसा गार्हस्थ्य जीवन, जिसमें एक अधेड़ व्यक्ति का पहले यज्ञोपवीत संस्कार होता है, फिर पूर्व पत्नी से ही उसका विवाह होता है। फिर वह व्यक्ति नये सिरे से पिता बनता है और सन्तन सुख

15 नंदापट्टी (बहेड़ी, दरभंगा), प्राचीन हस्तलेख से प्राप्त।
16 नंदापट्टी (बहेड़ी, दरभंगा), प्राचीन हस्तलेख से प्राप्त; नैथिली प्राचीन गीतावली, पूर्वोक्त (14ख), पृ. 109, गीत संख्या. 141.

प्राप्त करता है। एक आदर्श पति और पिता बनने का प्रयास करता है, पत्नी, परिवार तथा समाज से सहज प्रेम तथा निर्दुष्ट अपनत्व पाने का प्रास करता है, लेकिन वह सफल नहीं हो पाता है। उसकी पत्नी भी भेद-भाव रखती है, समाज उसे सहज स्वीकार नहीं करता है, उसकी उपेक्षा तथा उपहास करता है। कवि के जावन की ये निजताएँ, उनकी अंतर्वेदना उनके हृदयगत मनोभाव उनके गीतों में प्रकारान्तर से उमड़ पड़े हैं।

पूर्व उद्धृत गीत सं. 1 में मेना जिस प्रकार से तप-जप छोड़कर रमणी पर मन लगानेवाले महादेव के यतित्व का उपहास करती है, गीत सं. 3 में हाथ कांकण बांध बूढ़ महेशे, जैसा जो कटु व्यंग्य है, वह विष्णुपुरी के जीवन का कटु यथार्थ था। अपने पुत्र जन्म के उल्ला को उन्होंने कृष्णजन्म के बहाने अभिव्यक्त किया तो प्रेम को नवजात शिशु की तरह सहेज रखने की उपमा (गीत सं. 7) देने के पीछे उनकी वे स्वानुभूतियाँ प्रेरक थीं। गीत सं. 5 में नायिका द्वारा अपने प्रेम को बचाने की गुहार नायक से लगायी गयी है, वह नायिका की व्यथा नहीं बल्कि उनकी परिणीता पत्नी की व्यथा थी, जिसे ठुकराकर विष्णुपुरी ने संन्यास ग्रहण किया था और बारह वर्षों तक उनकी पत्नी एकाकी जीवन जाने को विवश रही, और वह पाषाणहृदया हो गयी। इस महाने सन्त के जीवन के ये उतार-चढ़ाव उनके गीतों में अभिव्यक्त हुए हैं।

तत्कालीन काव्य-धारा

विष्णुपुरी की भाषाकाव्य-रचना का लेकर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है कि इस रचना के पीछे उनका स्वान्तःसुखाय भाव था या कोई विशेष हेतु? इसका उत्तर पाने के लिए विष्णुपुरी के समकालिक मिथिला की परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक होगा। ओइनिवार राजवंश शासित मिथिला के इतिहास में यह काल-खण्ड भाषा, साहित्य, कला तथा संस्कृति की दृष्टि से स्वर्णकाल था। मैथिली में रचित विद्यापति के सुमधुर पद देश में पूर्व से लेकर पश्चिम तक धूम मचा रहे थे। लेकिन विद्यापति अपने कालखण्ड के अकेले गीतकार नहीं थे। उनके समकाल में स्वयं ओइनिवार राजा देवसिंह, इसी वंश की एक महारानी धीरमती, विद्यापति के पुत्र हरपति और पुत्रवधू चन्द्रकला, ओइनिवार नरेश शिवसंह के मंत्री अमृतकर, भवानीनाथ, भवेश, धराधर समेत अनेक कवि रचनाशील थे।[17] विद्यापति के सखा आश्रयदाता महाराज शिवसिंह के संबंध में भी यह कहा जाता है कि वे भी गीत-रचना में निपुण थे। सिंह भूपति भनिता से प्राप्त कतिपय प्राचीन पदों के संबंध में विद्वानों की धारणा है कि वे शिवसिंह के रचित गीत हैं।[18]

मिथिला के संस्कृतिक इतिहास का वही कालखण्ड था जिसमें विद्यापति ने शिवसिंह के आश्रित प्रसिद्ध कथक कलाकार जयंत के साथ मिलकर नये नये देशी रागों की उद्भावना कर हिन्दुस्तानी संगीत से पृथक् मिथिला संगीत की पहचान स्थापित की थी। उन नये नये रागों में गायन हेतु विद्यापति ने विभिन्न पदों की रचना की तो उनके समकालिक अन्य कवि भी पीछे नहीं रहे।[19] विद्यापति समेत अन्य कवियों के गीत स्वतंत्र रूप से गायन के साथ-साथ कीर्तनियाँ नाटकों, नाचों, कथक जैसे कतिपय प्रदर्शनीय कला रूपों में प्रयुक्त हो रहे थे और इस तरह ये गीत मिथिला की सीमा को पार कर नेपाल, बंगाल, असम, उड़ीसा,

17 विद्यापति गीत संचय रामदेव झा एवं मोहन भारद्वाज (सं.) साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1999ई. पृ. 21-22 (प्राक्कथन)
18 मिथिलेशलोकनिक मैथिली कविता, नरेन्द्रनाथ दास, मिथिला मिहिर, मिथिलांक, दरभंगा, 1936ई.।
19 रागतरंगिणी, लोचन, शशिनाथ झा (सं.), मैथिली अकादमी. पटना. 1981. तृतीय तरंग, श्लोक– 4-15) पृ. 65.

आदि प्रान्तों की यात्राएँ कर रहे थे।[20]

यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है कि पूर्व में जिस शिवसिंह की चर्चा की गयी है उनकी एक उपराजधानी विष्णुपुरी के पैतृक गाँव तरौनी के पूर्व में स्थित थी जो आज भी शिवइसिंह गढ़ और रजबाड़ा नाम से जाना जाता है।[21] यह स्थान राजनैतिक दृष्टि से जितना महत्त्वपूर्ण था उतना ही साहित्य-संगीत और कला की दृष्टि से भी ।

वैराग्य छोड़कर गार्हस्थ्य जीवन आरम्भ करनेवाले विष्णुपुरी अपने समकाल के इसी रचनात्मक वातावरण से प्रभावित हुए हैं। काव्यरचना की प्रतिभा तो उनमें थी ही वे अपने युग की प्रवृत्ति के साथ स्वयं को जोड़ने का प्रयास में ऐसे गीतों की रचना की।

यद्यपि उनके बहुत कम गीत मिल सके हैं, तथापि इतना तो निश्चित है कि उनकी रचनाएँ भी कीर्तनियाँ नाटकों में सम्मिलित की गयीं और वह नेपाल नरेश तक पहुँच गयी। इनके शिव एवं कृष्ण विषयक गीत संवाद के रूप में मिले हैं जो शिव पार्वती तथा राधाकृष्ण की कथाओं के साथ जोड़ने पर इनकी कथात्मकता भी स्पष्ट हो जाती है। इससे इस संभावना को बल मिलता है कि विष्णुपुरी ने शिव तथा कृष्णविषयक कम से कम दो कीर्तनियाँ नाटकों की अवश्य रचना की होगी, जो आज सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हैं।

आज इस बात की आवश्यकता है कि परमहंस विष्णुपुरी के जीवन के अनसुलझे रहस्यों के साथ साथ उनकी लोकभाषा की रचनाओं की खोज मिथिला समेत उनके समस्त प्रभावक्षेत्रों में कर उन्हें विद्वत् समुदाय के समक्ष प्रस्तुत किया जाये।

पूर्वोत्तर भारतीय वैष्णव संप्रदाय के आद्य पथ-प्रदर्शक आचार्य, वैष्णव भक्ति दर्शन के द्रष्टा पुरुष के रूप में उनकी ऐतिहासिक भूमिका का सम्यक् मूल्यांकन कर मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में उन्हें समुचित स्थान प्रदान कराने की दिशा में अध्येता एवं गवेषक तत्परता के साथ सक्रिय हों।

***

20 मिथिलाक अभिनव भरत विद्यापति, शंकरदेव झा, मिथिला-भारती, भाग 6 अंक i-iv, मैथिली साहित्य संस्थान, पटना, 2019, पृ. 29-50.

21 मिथिलातत्त्वविमर्श, पूर्वोक्त (6), पृ. 158 (पूर्वार्द्ध)

हनुमानजी की स्तुति

—'श्री घनश्याम दास हंस'

वन्दौं लाल लंगोटवाला, घर-घर करें उजाला ॥टेक॥

विश्व विख्याता विपुल बल दाता ।
रिद्धि सिद्धि लाता ज्योति जगाता ॥
जय हनुमान सिद्धि विधाता, आप नाम की जपू माला ।
वन्दौं लाल लंगोटवाला, घर-घर करें उजाला ॥

अंजनी माता केशरी ताता ।
हनुमत भ्राता चरणन ध्याता॥
जपि-जपि मंत्र जाप करता,राम भक्त हनुमान माला ।
वन्दौं लाल लंगोटवाला, घर-घर करें उजाला ॥

संकट आता मन घबराता ।
दौड़ समझाता धीर बँधाता॥
हनुमत सिर मुकुट सुहाता,माथे तीलक निराला ।
वन्दौं लाल लंगोटवाला, घर-घर करें उजाला ॥

हरि अपनाता सुमंगली गाता ।
सत्संग सुनता मन हरसाता॥
नव उत्साह जोश बढ़ाता,घनश्याम जीवन खुशहाला।
वन्दौं लाल लंगोटवाला, घर-घर करें उजाला ॥

***

'भक्तिरत्नावली' के बंगला अनुवादक

लौडिय कृष्णदास

डा. ममता मिश्र दाश

*संस्थापक सचिव, प्रो. के.वी. शर्मा रिसर्च इंस्ट्च्यूट, अड्यार, चेन्नई

पूर्वोत्तर भारत में मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन के पुरोधा सन्त परमहंस विष्णुपुरी की भक्तिरत्नावली का सबसे पहले बंगला में अनुवाद हुआ। इसके अनुवादक वर्तमान सिलहट के समीप लउर नामक प्रदेश के राजा दिव्य सिंह ने किया था। इस राजा का काल 1470-80 ई. के बीच माना गया है। इन्होंने अपने राजपुरोहित वेदान्ताचार्य से वैष्णव मन्त्र की दीक्षा ली तथा वैरागी होकर वृन्दावन चले आये और कृष्णदास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इसी कृष्णदास ने परमहंस विष्णुपुरी की भक्तिरत्नावली का बंगला में अनुवाद किया था। बंगला साहित्य के आधार पर इस ग्रन्थ का परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

भारतीय परम्परा में संस्कृत भाषा में रचित वेद, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, काव्य, निबन्ध-जैसे ग्रन्थों की टीकाएँ जितनी प्रसिद्ध है, आञ्चलिक भाषाओं में इन सब ग्रन्थों के अनुवाद भी उतना प्रसिद्ध हैं। इसीलिये रामायण, महाभारत, भागवत, भगवद् गीता आदि विषयों पर टीका टिप्पणियाँ उपलब्ध होने के साथ-साथ प्रान्तीय भाषा में इन सबका अनुवाद भी उपलब्ध है। प्रायशः ये अनुवाद पद्यरूप होते हैं।

रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थों का अनुवाद करते समय, अपने अपने प्रान्त में प्रचलित कुछ कथाओं का सन्निवेश भी स्थल विशेष पर किया गया है। परन्तु भगवद्गीता की स्थिति ऐसी नहीं रही और भारत की हर एक प्रान्तीय भाषा में इस ग्रन्थ का अनुवाद हुआ है।

रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थों की विशालता के कारण कुछ प्रान्तीय भाषा में ये सब ग्रन्थ पूर्णतया अनूदित है तो कहीं-कहीं इन सब ग्रन्थों के सारांश को लेकर अनुवाद किया गया है।

इन सब ग्रन्थों के सार निर्यास निकालकर कुछ ऐसे भी ग्रन्थ संस्कृत में रचित हुए हैं, जिसमें पूरे ग्रन्थों की विषयवस्तु तो मिल जाती है और पढने के बाद आत्मतृप्ति भी प्राप्त होती है।

महाभारत ग्रन्थ के आधार पर 'महाभारत-कथासंक्षेप' (चतुर्भुज मिश्र), 'महाभारत कथासार' (शिवानन्द विद्यानिधि), 'महाभारत-कथा-संग्रह, 'महाभारत-तात्पर्यप्रकाश', 'महाभारत-सारोद्धार', 'महाभारतसार' (चतुर्भुज मिश्र, रामचन्द्र), 'महाभारत-सारसंग्रह' (लक्ष्मणवल्लभशिष्य, अप्पय-दीक्षित), 'महाभारत-संग्रह' (महेश्वर, रामवर्मन्, लक्ष्मणसूरि)-जैसे ग्रन्थ भारतीय विद्वानों की ज्ञान-पिपासा का परिचय देते हैं।

वैसे रामायणग्रन्थ के आधार पर 'रामायण-कथा' (गणेश विद्याविनोद), 'संक्षेप-रामायण' (वासुदेव), 'लघुरामायण' (कृष्णावधूत), 'रामायण-कथासार' (क्षेमेन्द्र), 'रामायण-कथासार-संग्रह', 'रामायणप्रबन्ध' (नारायण भट्ट मेलपुतूर), 'रामायणशतक' (देवराज), 'रामायण-संग्रह' (ईश्वर-तीर्थ, नारायण, रविवर्म, कुलशेखर, रामानुज आदि) इत्यादि ग्रन्थ रामायण पठन, पाठन और अभ्यास परम्परा का प्रमाण देते हैं।

वैसे भागवत के आधार पर कुछ ग्रन्थ हमारी नियमित सारस्वतधारा का परिचय देता है। जैसे— 'भगवत्तत्त्वदीप' जो 'भागवतप्रदीप', 'भगवत्तत्त्वार्थ-प्रदीप' और 'भागवतसंक्षेप' के नाम पर भी परिचित है (वल्लभाचार्य), 'भागवतकथासंग्रह', 'भागवतकथा-भूषण', 'भागवतरहस्य', 'भागवतसंक्षेप' आदि।

वैसे विष्णुपुरीकृत भक्तिरत्नावली' भागवत के आधार पर यानि भागवत का सारभूत एक ग्रन्थ है, जो त्रयोदश अध्याय संवलित है। यह ग्रन्थ 'हरिभक्तिरत्नावली', 'भगवद्-भक्तिरत्नावली' और 'विष्णुभक्तिरत्नावली' नाम से भी परिचित है। इस भक्तिरत्नावली ग्रन्थ का बंगीय पद्यानुवाद कृष्णदास के द्वारा किया गया था।

वामभाग से प्रथम— अद्वैताचार्य की प्रतिमा

इसका उत्कल पद्यानुवाद भीमदास के द्वारा भी किया गया है।

बंगाल के श्रीहट्ट (वर्तमान सिलहट) के पास एक लउड़ ग्रामवासी होने के कारण इनका नाम कृष्णदास लौडिय भी है। लौडिय कृष्णदास एक ब्रह्मचारी थे। ये अद्वैत शाखा के भक्त रहे हैं। इनका पूर्व नाम दिव्यसिंह था और ये एक राजा भी थे। इनकी राजधानी लाउड़ अथवा नवद्वीप में थी।[1] सन्न्यास ग्रहण करने ने बाद इनके गुरु अद्वैताचार्य ने इनका नाम कृष्णदास रखा।

इनके गुरु अद्वैताचार्य का जन्म 1434ई. में हुआ था।[2] इनका नाम कमलाक्ष भट्टाचार्य्य था। इनके पिता कुबेर पण्डित थे। गौड़ीय भक्ति-आन्दोलन के पाँच पुराधाओं— चैतन्य, नित्यानन्द, गदाधर पंडित, श्रीवास के साथ अद्वैताचार्य प्रथमोपात्त माने जाते हैं।

शक्ति उपासक दिव्यसिंह सन्न्यास ग्रहण करने के बाद गोपाल उपासक बने और अपना राजपाट छोडकर एक भिखारि जैसा वेश लिये वृन्दावन पधारे।

शक्तिमन्त्र छाडि गोपालमन्त्रे दीक्षा निल।
कृष्णदास नाम तार अद्वैत राखिल॥

1. श्रीश्रीगौडीय वैष्णव अभिधान, सं. हरिदास दास, प्रथम संस्करण, चैतन्याब्द 471. पृ. 1244.
2. तदेव, पृ. 1134

वृन्दावने चलिलेन हईया भिखारी
कृष्णदास ब्रह्मचारी वृन्दावने ख्याति॥

अर्थात् शक्ति-मन्त्र छोड़कर उन्होंने गोपालमन्त्र में दीक्षा ली। अद्वैताचार्य में उनका नाम कृष्णदास रखा। वे भिक्षुक के समान वृन्दावन चले और वृन्दावन में उनकी ख्याति कृष्णदास के नाम से हुई। वृन्दावन में रूपगोस्वामी तथा काशीश्वर गोस्वामी के साथ इनकी गहरी मित्रता थी।

कृष्णभक्त होने के कारण उन्होंने श्रीविष्णुपुरी-रचित विष्णुभक्तिरत्नावली ग्रन्थ का बंगला पद्यानुवाद 'विष्णुभक्तिपीयूषवाहिनी' के नाम से किया। उसके बारे में उन्होंने कहा-

श्रीविष्णुपुरी ठाकूर एक भक्त थे और सन्न्यासी भी रहे। कृष्णभक्त होने के कारण कृष्ण भक्ति का प्रचार करने में आग्रही श्रीविष्णुपुरी भागवत-जैसे सागर के द्वादश अध्याय यानि द्वादश स्कन्ध का पूर्णरूप में अध्ययन कर के उसके अठारह हजार श्लोकों का निर्यास चार सौ श्लोक में किया है और कृष्णदास इसी निर्यासपूर्ण भक्तिरत्नावली का पद्यानुवाद अपनी भाषा यानि बंगला में किया।[3]

इनि 'विष्णुभक्तिरत्नावली'— नामक श्रीविष्णुपुरी-रचित ग्रन्थेर पयारे अनुवाद करियाछेन्। एइ मूल ग्रन्थेर इतिहास सम्बन्धे कृष्णदास बलेन-

श्री विष्णपुरी ठाकूर भकत सन्न्यासी।
जीव विचारिला कृष्ण भकति प्रकाशि॥
विचारि विचारि भागवत पयोनिधि।
विष्णुभक्तिरत्नावली प्रकाशिला निधि॥
प्रति अध्याय विचारिया द्वादश स्कन्ध।
सारि श्लोक उद्धारिया करिला प्रबन्ध॥
नानाविध श्लोक व्याख्या करि साधु।
तापित जीवेर तरे सिञ्चिलेक मधु॥
अष्टादश सहस्र श्लोक भागवत।
ता हते उद्धार करिला श्लोक चारिशत॥
विष्णुपुरी ठाकूर रचिला रत्नावली।
कृष्णदास गाइलेक अद्भुत पाँचाली॥

इस अनुवाद का अध्ययन करने से विष्णुपुरी का समय, भक्तिरत्नावली की टीका कान्तिमाला जिसका रचयिता स्वयं विष्णुपुरी हैं कि नहीं इन सब विवादपूर्ण विषयों पर कुछ आलोकपात होगा।

शशिभूषण विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक 'जीवनीकोष' में एक सूचना दी है कि कृष्णदास ने इसे पांचाली छन्द में अनूदित किया था।[4]

इस लौडिय कृष्णदास ने अपने गुरु अद्वैताचार्य की बाललीला का वर्णन करते हुए बाल्यलीलासूत्रम् नामक संस्कृत ग्रन्थ की भी रचना की थी। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन वृन्दावन में बिताया।

***

3. श्रीश्रीगौडीय वैष्णव अभिधान, सं. हरिदास दास, प्रथम संस्करण, चैतन्याब्द 471. पृ. 1189
4. शशिभूषण विद्यालंकार, 'जीवनीकोष' प्रकाशक देवव्रत चक्रवर्ती, कलकत्ता, द्वितीय खण्ड, पृ. 175

'भक्तिरत्नावली' के असमी अनुवादक महापुरुष माधवदेव

श्री नारदोपाध्याय

अध्यापक, विज्ञान, नागशङ्कर, विश्वनाथ, (असम)

पूर्वोत्तर भारत में वैष्णव-परम्परा के दार्शनिक सन्त परमहंस विष्णुपुरी की कृति कान्तिमाला व्याख्यासहित भक्तिरत्नावली का अनुवाद असमिया भाषा में माधवदेव ने 1570 ई. में किया था। लेखक ने आसाम की परम्परा के आधार पर यह सिद्ध किया है कि "शङ्करदेव के निधन होने के दो वर्षों के बाद माधवदेव ने सोन्दरा नामक स्थान में अपने भांजे रामचरण ठाकुर के घर में रहते हुए भक्तिरत्नावली ग्रन्थ का अनुवाद कार्य पूरा किया।" इस प्रकार, शंकरदेव के निधन वर्ष 1568 के 2 वर्ष बाद इसकी रचना हुई थी। विष्णुपुरी के सम्बन्ध में आसाम की लोकपरम्परा का संकलन कर अग्रतर शोध का एक दिशा देने का भी प्रयास किया है। माधवदेव के इस अनुवाद के आधार पर लेखक ने कतिपय ऐतिहासिक तत्त्वों को उजागर किया है। साथ ही, उन्होंने आसाम के प्रसिद्ध सन्त माधवदेव के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री भी प्रस्तुत किया है।

असमिया जीवन एवं संस्कृति के मूलाधार के निर्माता, असमी साहित्य के अन्यतम स्रष्टा, नवीन वैष्णव धर्म के एकान्त साधक, महापुरुष शंकरदेव के साथ समानभाव संलग्न महापुरुष माधवदेव के नाम से प्रसिद्ध तथा स्मरणीय हुए। उन्होंने अनेक प्रकार से गीत, नाटक तथा भक्तितत्त्व से परिपूर्ण अनेक ग्रन्थों की रचना कर असमिया साहित्य को और अधिक समृद्ध किया तथा साहित्य के क्षेत्र में एक नयी गति प्रदान की। भारत के पूर्वांचल प्रान्त में नवीन वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार कार्य में माधवदेव की विशिष्ट भूमिका रही है।

असम राज्य के अंतर्गत मारायणपुर नामक क्षेत्र में 'लेतेकुपुखुरीपार' नामक स्थान में उनका जन्म 1489 ई. में हुआ था। माधवदेव के पिता गोविन्द गिरि तथा माता का नाम मनोरमा था। उनका बाल्यकाल हरिसिंहवरा के घर में घाघरमाजि के आश्रय में बीता। इसके बाद वे पिता के साथ वण्डुक में अवस्थित अपने पुराने घर लौट गये। वहाँ चौदहवें वर्ष की उम्र में राजेन्द्र नामक गुरु के द्वारा संचालित संस्कृत टोल विद्यालय में अध्ययन हेतु उनका पंजीकरण हुआ। उस पाठशाला में कम समय मे ही उन्होंने भलीभाँति अध्ययन कर सुन्दर शिक्षा पायी। जब उनके पिता का देहान्त हो गया तब वे मण्डुका स्थान को छोड़कर माजुल्य नामक स्थान पर चले आये वहाँ अपने मित्र रामदास की सहायता से उनका परिचय महापुरुष शंकरदेव से हुआ। माधवदेव तथा शङ्करदेव के बीच देवीपूजा, बलिविधान आदि

विषयों को लेकर अनेक तर्कयुक्त शास्त्रार्थ हुआ, पर अन्त में माधवदेव इस विषय पर पराजित हुए। तब वे शङ्करदेव की शरण में गये तथा नवीन वैष्णव धारा के गुरु के रूप में उन्हें स्वीकार किया। इसके बाद वे शङ्करदेव के साथ ही वैष्णव धर्म की इस नवीन धारा के परम साधक तथा प्रचारक बन गये।

माधवदेव प्रसिद्ध कवि, नाटककार, गीतकार, धर्मप्रचारक तथा सुन्दर गायक भी थे। साहित्य क्षेत्र में उनकी एक अपनी विशिष्टता विद्यमान है। उनके द्वारा विरचित नाटकों के माध्यम से वैष्णव धर्म की महिमा का प्रचार देखने को मिलता है। उनका मन श्रीकृष्ण के शिशु रूप के प्रति अधिक आकृष्ट था। इसलिए उनके गीतों में विशेष रूप से बालरूप कृष्ण के नाना प्रकार की चौरलीला, चंचलता, चतुरता आदि का वर्णन हुआ है। उन्होंने रामायण के आदिकाण्ड का भी भाष्य किया था। इसके माध्यम से उन्होंने श्रीराम के बाल्यकाल की विविध लीलाओं का जी-भरकर वर्णन किया है। उनके द्वारा रचित नाटक, गीत इत्यादि सभी वात्सल्य रस से परिपूर्ण हैं। उनके गीतों की तुलना हम महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम तथा उत्तर भारत के सन्त सूरदास के गीतों के साथ कर सकते हैं।

नाट्य-रचनाएँ—

'चोरधरा', 'पिम्परा गुचोवा', 'भोजन विहार', 'भूमि लेटोवा', 'अर्जुन भञ्जन', 'तदुपरि 'रासझुमुरा', 'कोटोरा खेला', 'ब्रह्ममोहन' , 'भूषण हरण' इत्यादि

आख्यानमूलक रचनाएँ-

रामायण के आधार पर आदिकाण्ड तथा भागवत के आधार पर राजसूय काव्य।

तत्त्वमूलक-रचनाएँ -

'जन्मरहस्य', 'भक्तिरत्नावली', 'नाममालिका', एवं 'नामघोषा'। माधवदेव की सर्वोत्तम एवं सबसे अधिक प्रसिद्ध रचना नामघोषा है।

गीत— माधवदेव द्वारा प्रणीत वरगीत, भटिमा इत्यादि असमिया गीत साहित्य की अमूल्य सम्पदा हैं। यहाँ असमिया वरगीत की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं-

"तेजरे कमलापति परभात निन्द।
तेरि चान्द मुख पेखो उठरे गोविन्द॥"
"याहेर चरन रेणु योगी नापाइ।
भकति बले ताको बन्धन कराइ॥"इति।

माधवदेव का तत्त्वमूलक ग्रन्थ भक्तिरत्नावली है। महापुरुष के द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म में शङ्करदेव कृत कीर्तन घोषा एवं दशम, इन दोनों का जो स्थान है वही स्थान माधवदेव के नामघोषा तथा भक्तिरत्नावली ग्रन्थ का है। ये चार ग्रन्थ महापुरुषों द्वारा प्रवर्तित वैष्णव धर्म के मुख्य स्तम्भ माने जाते हैं।

महापुरुष माधवदेव द्वारा रचित भक्ति-रत्नावली ग्रन्थ का मूल आधार विष्णुपुरी नामक संन्यासी द्वारा विरचित भक्तिरत्नावली ग्रन्थ है। इस मूल ग्रन्थ के आकार तथा विष्णुपुरी का विशेष परिचय उपलब्ध नहीं है। केवल वे महाशय स्वयं को तैरभुक्त संन्यासी कहते हैं। लोकविश्वास के अनुसार विष्णुपुरी पूरा नाम विष्णुशर्मा था। उनका जन्म मिथिला के तिरौणी (अथवा तरौणी) नामक गाँव में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। संस्कृत भाषा तथा शास्त्रों में वे निष्णात थे। तत्त्वज्ञान पाने के बाद उन्होंने संन्यास धर्म स्वीकार कर लिया। जनश्रुति[1] के अनुसार विष्णुपुरी ने प्रथन विवाह के बाद पत्नी में अशिष्ट आचरण देखकर उन्हें

[1] यह सम्पूर्ण वृत्तान्त असम *में प्रचलित* कथाओं के आधार पर है। वहाँ लोकप्रचलित तथ्यों को लेखक में संकलित किया है। प्रामाणिक इतिहास के लिए पाठक इस पत्रिका में प्रकाशित अन्य लेखों का अध्ययन करें।

छोड़ दिया और घर-संसार के मोह से भी निवृत्त हो गये। इसके बाद वे किसी शिवमन्दिर में रहते हुए वहाँ दूसरा विवाह किया।

उसी मन्दिर में वे जब थे, तब कहा जाता है कि, उन्होंने भक्तिरत्नावली नामक ग्रन्थ की रचना की। भक्तिरत्नावली भक्तिविषयक सिद्धान्त ग्रन्थ है। रत्न किसी मूल्यवान् पत्थर का बोध कराता है। आवलिः अथवा आवली शब्द से पंक्ति अथवा माला का बोध होता है। अतः रत्नों की माला को रत्नावली कहते हैं। यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास हुआ है। इसलिए इस ग्रन्थ में भक्तितत्त्व का सार भाग पद्यों में संकलित है।

माधवदेव ने अपने ग्रन्थ में इसका परिचय इस प्रकार दिया है-

भक्ति-रत्नावली ग्रन्थ भागवत सार।
मुरुख माधवे पद करिले प्रचार॥3॥
कृष्णक स्मरणे आरम्भर सिद्धि होक।
बोलो करयोड़े शुना सभासद लोक।
अल्पमति हुया वर करिलो आरम्भ।
जानि महाजने न करिबा उपालम्भ॥4॥

\+ \+ \+

जानि शुना आन मत त्यजिय चातुरि।
आछिलन्त सन्न्यासी नामत विष्णुपुरी॥
परम महन्त महाजन माजे सार।
तेन्ते करिलन्त भागवत सारोद्धार॥8॥
भक्ति रत्नावली नामे नाइ पटन्तर।
परम अमूल्य रत्न भकत जनर॥
मति अनुसारे पद निबन्धिरो आर।
कृष्णर प्रसादे होक लोकत प्रचार॥9॥

अर्थात् भक्तिरत्नावली जो भागवत का सार है, उसका प्रचार मूर्ख माधवदेव कर रहे हैं। आरम्भ में श्रीकृष्ण के स्मरण से सिद्धि मिलेगी। हाथ जोड़कर नं कह रहा हूँ, सभासद सुनें। मैं हूँतो अल्पमिति फिर भी विसाल कार्य आरम्भ कर रहा हू। आपलोग महान् व्यक्ति हैं, मेरी हँसी नहीं उड़ायेंगे। ... दूसरे मत को शून्य समझकर उन मतों में अपनी चतुरता का त्याग कर विष्णुपुरी नामक एक संन्यासी हुए। वे परम धार्मिक तथा श्रेष्ठ जनों के सारभाग थे। उन्होंने भागवत का सारोद्धार किया था। वह भक्तिरत्नावली के नाम से पढा जाता है, जो भक्तों के लिए परम अमूल्य है। मैं अपनी बुद्ध के अनुसार उसे पद्य में निबद्ध कर रहा हूँ। श्रीकृष्ण की कृपा से लोक में इसका प्रचार होगा।

इसी प्रकार तृतीय भक्तिविशेषण विरचन में माधवदेव ने 443वें पद में विष्णुपुरी का नामोल्लेख किया है-

भागवत क्षीर सागर मथिया
विष्णुपुरी महामति
भक्ति रत्नावली अमृत प्रचार
करिला लोकक प्रति॥

अर्थात् महान् विद्वान् विष्णुपुरी ने भागवत रूपी क्षीर समुद्र का मन्थन कर भक्तिरत्नावली नामक अमृत का प्रचार लोगों के बीच किया।

माधवदेव ने असमिया भक्तिरत्नावली के अन्त में भी पदसंख्या 1201 में कहते हैं-

श्रीमन्त पुरुषोत्तम चरण पङ्कज कृपा
मकरन्द विन्दु प्रसादत।
विष्णुपुरी विरचित श्रीभक्ति रत्नावली
एहिमाने भैल समापत॥
शूनियोके सभासद साधु महाजनसब
वोलो मइ करि कृताञ्जलि।
महा मूढमति हूया विरचिला पदबन्धे
महाग्रन्थ भक्तिरत्नावली॥1202

श्रीमन्त पुरुषोत्तम विष्णु के चरणकमल की कृपा से विष्णुपुरी रचित श्रीभक्तिरत्नावली सम्पूर्ण हुआ।

इसे सुनकर श्रेष्ठ जन सभासद अंजलि बाँधकर उनकी जय कहें। मैंने महामूर्ख होकर भी इसे पद्य में बाँधकर भक्तिरत्नावली नामक महाग्रन्थ की रचना की है।

यही पर पद संख्या 1204 में माधवदेव ने भागवत को चारों वेदों का सार कहा है तथा विष्णुपुरी रचित 'भक्तिरत्नावली' प्रामाणिक ग्रन्थ माना है-

वैकुण्ठर शास्त्र ईटो चारिया वेदेर सार
कृष्णर मूखर निज वाणी।
भागवत सार तूलि विष्णुपुरी महामति
करिलन्त संग्रह प्रमाणि॥

अर्थात् वैकुण्ठ का सार है यह, चारों वेदों का भी सार है, यह श्रीकृष्ण के मुख की वाणी है। इस भागवत सार को लेकर विष्णुपुरी नामक महाविद्वान् ने प्रमाण के साथ संकलित किया।

इस ग्रन्थ की 'कान्तिमाला' व्याख्या का उल्लेख माधवदेव ने भी किया है-

महा कान्तिमाला युक्त भक्ति रत्नावली ग्रन्थ
करिलोहो अनेक यतने।
बिचारिय़ा पूर्ब्बापर इहार गुणक जानि
तुमिसब तुष्ट हैबा मने॥
इहार श्रीधर स्वामी भक्ति लिखनत यत
न्यूनाविध भाल निरन्तर।
सिसब चञ्चल दोष मइ लुभिय़ार क्षमा
करिबे उचित महन्तर॥1200

यह ठीक उसी पंक्ति का अनुवाद है, जिसमें विष्णुपुरी ने भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है-

इत्येषा बहुयत्नतः खलु कृता श्रीभक्तिरत्नावली
तत्प्रीत्यैव तथैव सम्प्रकटिता तत्कान्तिमाला मया।
अत्र श्रीधरसत्तमोक्तिलिखने न्यूनाधिकं यत्त्वभूत्
तत्क्षन्तुं सुधियोर्हत स्वरचना लुब्धस्य मे चापलम्॥

अब यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक विष्णुपुरी की मूल रचना है, जिसका अनुवाद मादवदेव ने किया है। इस प्रकार ग्रन्थ के इस श्लोक को प्रतिलिपिकार की रचना मानकर कान्तिमाला व्याख्या का श्रेय किसी श्रीधर को देना संगत नहीं है।

शङ्करदेव के निधन होने के दो वर्षों के बाद माधवदेव ने सोन्दरा नामक स्थान में अपने भांजे रामचरण ठाकुर के घर में रहते हुए भक्तिरत्नावली ग्रन्थ का अनुवाद कार्य पूरा किया। संन्यासी विष्णुपुरी ने श्रीमद्भागवत से भक्तिविषयक श्लोकों का संग्रह कर उसे 13 विभागों में बाँटकर मूल भक्तिरत्नावली ग्रन्थ की रचना की थी। भगवत के अतिरिक्त उन्होंने दो-तीन श्लोक 'हरिभक्ति-सुधोदय' नामक ग्रन्थ से भी लिया है। इनके अतिरिक्त इनके अपने भी दो-चार श्लोक हैं। इस भक्ति-रत्नावली ग्रन्थ में 398 श्लोक हैं। माधवदेव ने इनका अनुवाद 1200 से अधिक पदों में किया है।

शङ्करदेव के सान्निध्य में आने के बाद माधवदेव एकनिष्ठ होकर स्वयं को धर्मचर्चा में लगा दिया। इसके बाद वे कोच के राजा के अधीन कामरूप में आकर गनककुछि नामक स्थान में अपना घर बनाकर वही रहते हुए शङ्करदेव के साथ धर्मचर्चा में निमग्न हो गये। इसके बाद कुछ दिनों तक उन्होंने तीर्थाटन भी किया।

अन्त में 1596 ई. में भाद्रमास के शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि को 107 वर्ष की अवस्था में महापुरुष माधवदेव ने महाप्रयाण किया। ऐसे सौभाग्यशाली महापुरुष धन्य हैं, जो हमेशा स्मरणीय हैं।

***

‘भगवद्भक्तिमाहात्म्यम्’ में वर्णित

विष्णुशर्मा चरित
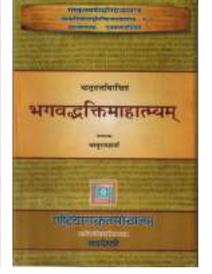
डा. सुन्दरनारायण झा

सहाचार्य वेदविभाग, (अ.प्रा.)
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः,
बी-4, कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्, नवदेहली-16

नाभादास के भक्तमाल के आधार पर संस्कृत श्लोकों में निबद्ध रचना भगवद्भक्तिमाहात्म्यम् 19वीं शती के पूर्वार्द्ध में काशी मे रहकर लिखी गयी है। इसके प्रमेता चन्द्रदत्त ओझा ने स्पष्ट किया है कि काशी में साधु-सन्तों की परम्परा में प्रचलित भक्तों की गाथा इसके लेखन का मुख्य आधार है। इस विशाल ग्रन्थ का 47वाँ सर्ग विष्णुपुरीजी का वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। विष्णुपुरीजी ने वर्तमान मधुबनी ज्ला के जयनगर के पास दुल्लीपट्टी गाँव में शिलानाथ महादेव की स्थापना की थी, जो आजकर लोगों की आस्था का केन्द्र बना हुआ है। यहाँ विन्दुह्रद नामक एक सरोवर है। कहा गया है कि यहाँ सती का उदर गिरा था। इसी मन्दिर के पास विष्णुपुरीजी को कमला नदी में एक शिला मिली तथा भगवान् शंकर का दर्शन हुआ। कहा जाता है कि भगवान् शिव ने उन्हें विष्णुमन्त्र देकर उसका जप करने की आज्ञा दी। इस शिला की स्थापना कर वे यही रहकर विष्णुमन्त्र का जप करने लगे। इसी भगवद्भक्तिमाहात्म्य के आधार पर विष्णुशर्मा का चरित यहाँ प्रस्तुत है।

मथ्यन्ते (कामक्रोधलोभमोहादयः) रिपवो यत्र सा मिथिलेति विश्रुता। इस व्युत्पत्ति से जहाँ उक्त चारों शत्रुओं का मन्थन कर उनपर विजय प्राप्त किया जा सके वह सुप्रसिद्ध स्थान मिथिला विरुदावली से विभूषित है। मिथिला के आदि राजा योगिराज जनक ने अपनी तपश्चर्या से समस्त आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर पीढ़ी दर पीढ़ी अनाहत गति से प्रजापालनादि श्रेष्ठ कार्यों को करते हुए उत्तम गति को प्राप्त हुए ऐसा इतिहासपुराणादियों में स्वर्णाक्षर में लिखित है। भगवान् व्यास ने भी गीता में भगवान् श्रीकृष्ण के वचन को स्मरण कराते हुए कहा है कि **कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।**[1] अर्थात् जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्तिरहित कर्मद्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे। यहाँ आसक्तिरहित शब्दप्रयोग के द्वारा भगवान् यह बतलाना चाहते हैं कि जिस कारण से व्यक्ति के अन्दर आसक्ति का भाव उत्पन्न होता है, उस कारण का त्यागकरके परमसिद्धि को प्राप्त करना सम्भव होता है। आसक्ति बुद्धि से युक्त होकर कृतकार्य तो स्वार्थपरक ही होता है उससे परमसिद्धि नहीं

1 गीता, 3.20

अपितु स्वार्थसिद्धि मात्र होगी। अब यहाँ यह विचारणीय है कि आसक्ति का कारण क्या है? तो गीता में ही भगवान् ने इस रहस्य को समझाया है। यथा—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥[2]

अर्थात् संसारिक भोग विलासादि विषयों के प्रति आकर्षण से उसका ही चिन्तन सदैव मन में होने लगता है। जब विषयों के प्रति आकर्षण बढ़ेगा तो ईश्वर का ध्यान या ईश्वर का चिन्तन स्वाभाविक रूप से कम हो जायेगा। फलतः विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न होने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिमें भ्रम, स्मृतिमें भ्रम होने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और ज्ञान का नाश हो जाता है तब उसका सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार गीतोक्त वचनानुसार मिथिला की भूमि में उत्पन्नलोगों के भीतर विषयासक्ति का अभाव स्वतः दृष्ट होता है। गौतम, जनक, याज्ञवल्क्य, कात्यायन आदि प्राचीन महर्षि, कुमारिल, मण्डन, वाचस्पति आदि मधयकालीन तपस्वी एवं विष्णुशर्मा आदि आधुनिककालीन मनस्वियों के बल से मिथिला-भूमि अपनी गौरवमयी गाथा को आजतक संजोकर रखी हुई है।

मिथिला के सपूतों में अग्रगण्य वेद-वेदाङ्गादि शास्त्रों के पारदृश्वा विद्वान् पं विष्णुशर्माजी जो करमहा कुलोद्भव विप्रवंशावतंस दरभङ्गा-मण्डलान्तर्गत सकरी थाना सन्निकट तरौनी ग्राम के निवासी थे उनका यथोपलब्ध परिचय आपलोगों के सम्मुख उपस्थापित करने का यत्न कर रहा हूँ। आशा है कि पाठकवृन्द मेरे परिश्रम को सार्थक मानते हुए इस लेख को अपने दृष्टिपटल पर अवश्य स्थान देंगे।

भारत का इतिहास बहुत महत्त्वपूर्ण एवं दिव्य कथाओं से भरा पूरा है। कविकुलगुरु कालिदास एवं गोस्वामी तुलसीदासजी के चरित को जानने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि गृहस्थी बसाकर संन्यास ग्रहण करनेवाले सज्जनों के पीछे किसी बुद्धिमती या दिव्यप्रभा सम्पन्न स्त्री की ही भूमिका रहती है। ठीक वही परिस्थिति पं. श्रीविष्णुशर्माजी के साथ भी अवलोकनीय है। भगवान् मनु ने कहा है—

वेदशास्त्रर्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्प्यते॥[3]

तदनु वेदशास्त्रर्थतत्त्वज्ञ कुलीन विप्रवंश में अवतरित पं. विष्णुशर्माजी अपने कर्म में तत्पर रहते हुए पाणिग्रहणादि संस्कार से युक्त होकर पुत्रोत्पादनादि द्वारा पितृऋण से मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त करके, एक दिन अपनी सहधर्मिणी के कटुवचन से आहत होकर क्रोधानल की प्रचण्ड ज्वाला को सहने में असमर्थ होकर ग्राम की सीमा के पास स्थित शिवालय में पहुँचे। वहाँ भूतभावन

2 गीता, 2.62-63

3 मनुस्मृति, 12.102

भगवान् शिव की कृपा उन्हें प्राप्त हुई और मन में विरक्ति का भाव उत्पन्नहुआ। अन्तःकरण में वैराग्यभाव का उदय होने पर हृदयगुहा में भगवान् शिव को स्थापित कर गेरुआ (त्याग के प्रतीक नारंगी) वर्ण का अधोवस्त्र एवं उत्तरीय वस्त्र धारणकर, भस्मानुलेपनादि द्वारा शङ्करमय शरीर (आवरण) बनाकर रहने लगे। जब यह रहस्य जन-जन में प्रचारित हुआ तो गाँव के एवं उनके वंश के कुछ वृद्धलोग शिवालय पहुँचे तथा उन्हें संन्यासधर्म त्यागकर पुनः गृहस्थधर्म में समावर्तित होने का अनुरोध करने लगे। उनकी पत्नी भी अपने पुत्रें को साथ लेकर उन्हें मनाने के लिये वहाँ पहुँची। उनलोगों के द्वारा विविध तर्क उपस्थापित करके उनको अपने दायित्व का बोध कराने जैसा विविध प्रयास किया गया किन्तु पण्डितजी का दृढ़ निश्चय किसी भी युक्ति से बदलने वाला नहीं था। जब ग्रामीणों के द्वारा संन्यास त्याग विषयक अत्यधिक प्रयास किया जा रहा था तो सहसा उठकर चल दिये। पण्डितजी को सर्वस्व त्यागकर जाते हुए देखकर उनकी पत्नी, बच्चे एवं ग्रामीणजन रोते-विलखते उनके पीछे-पीछे चलते हुए उन्हें वापस गृहस्थी को स्वीकार करने का निवेदन करने लगे। तथापि उनका मन विचलित नहीं हो सका, फलतः वे सबको छोड़कर आगे बढ़ गये। कुछ दूर तक उनका पीछा करते-करते थक-हारकर ग्रामीण लोग, उनकी पत्नी एवं बच्चों को लेकर वापिस अपने गाँव में आकर सबलोग किं कर्त्तव्यविमूढावस्था में अपने-अपने घर चले गये।

इस घटना के बाद लोक (समाज) में यत्र-तत्र सर्वत्र पण्डित विष्णुशर्मा की निन्दा होने लगी कि इन्होंने अयथाविधि से संन्यासधर्म ग्रहण किया, ऐसा करना अनुचित है। अपने दायित्वों का बोझ अबला स्त्री के कन्धे पर डालकर इस प्रकार भाग जाना कथमपि उचित नहीं है, इत्यादि इत्यादि नाना प्रकार के तर्क-वितर्कों द्वारा पण्डितजी के निर्णय का लोक में अप्रशस्त कार्य करने जैसी निन्दा होने लगी कि शिखा-सूत्र सहित ही अपने कर्मबन्धन को त्यागकर संन्यासधर्म में प्रवृत्त हो गये हैं।

शिलानाथ मन्दिर प्रसंग तथा शरविन्दु सरोवर

इस प्रकार क्रोधानल की प्रचण्ड ज्वाला में अपने समस्त मान-सम्मान को भस्मसात् करके उसी भस्म को अनुलेपन बनाकर सम्पूर्ण शरीर में धारणकर शान्ति का अन्वेषण करते-करते शिलानाथ पहुँचे जहाँ भूतभावन भगवान् शङ्कर साक्षात् विराजते हैं। कमला नदी के तटपर अत्यन्त पुण्यप्रद प्रसिद्ध व्याघ्रतीर्थ वन में जहाँ नाना प्रकार के बाघ, हाथी आदि पशुओं के झुण्ड रहते हैं, उस घनघोर जंगल में जाकर उन्होंने एक वर्ष तक तपस्या की। उस स्थान का महत्त्व पुराणों में इस प्रकार वर्णित है–

"दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जब सती ने अपना देह परित्याग किया था तब सती के मृतशरीर को लेकर विरहातुर भगवान् शिव समस्त पृथ्वी की परिक्रमा किये थे। उस समय जिस-जिस स्थान पर सती के अङ्ग गिरे थे उस-उस स्थान पर भोलेनाथ ने भी अपने अङ्गों को सूक्ष्म भाव से स्थापित किया था। इस प्रकार समस्त भुवनों की परिक्रमा करने के उपरान्त भगवान् भोलेनाथ

समस्त भूमण्डल में श्रेष्ठ एवं पवित्र यज्ञीय देश (स्थान) मिथिला में आये। यज्ञीयदेश की परिभाषा देते हुए भगवान् मनु ने कहा है—

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥[4]

अर्थात् जिस भू-भाग में काले मृग स्वाभाविक रूप से भ्रमण करते हुए पाये जाते हैं, वह यज्ञीय देश है तदितर देश म्लेच्छ देश कहलाता है। मिथिला का भू-भाग ऐसा ही था, उस समय यहाँ काले हिरण पर्याप्त मात्र में पाये जाते थे। अतः मिथिला की भूमि यज्ञीय भूमि है।

शतपथब्राह्मण[5] में एक कथा है कि मथु के पुत्र माथव जिसका नाम विदेघ था वह प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टा गौतम ऋषि का शिष्य था। वे दोनों गुरु-शिष्य एकबार सरस्वती नदी के तटपर विहार कर रहे थे। मार्ग में चलते हुए गौतम ऋषि ने विदेघ से कुछ पूछा किन्तु उस समय राजा विदेघ के मुख में वैश्वानर अग्नि के प्रकट हो जाने के कारण विदेघ ने गौतम के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। गौतम के बार-बार पूछे जानेपर विदेघ द्वारा कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया जाता था, तो गौतम ने विदेघ के मुख में स्थित वैश्वानर-अग्नि को भड़काने के लिये विविध मन्त्रों का प्रयोग किया चूँकि गौतम को यह पहले से ही ज्ञात था कि विदेघ के मुख में वैश्वानर-अग्नि का वास है। गौतम द्वारा ज्यों ही **तन्त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्। देवाँ आ वीतये वह॥**[6] इस ऋङ्मन्त्र का प्रयोग किया गया तो विदेघ के मुख में प्रकट वैश्वानराग्नि की ज्वाला घृत शब्द के उच्चारण से भड़क गयी। राजा विदेघ अग्नि की प्रचण्ड-ज्वाला को रोकने में असमर्थ हो गये। तब वह अग्नि विदेघ के मुख से बाहर निकलकर नीचे पृथ्वी पर गिरने लगी। अग्नि की प्रचण्ड-ज्वाला से कहीं समस्त पृथ्वी न जल जाये इस भय से राजा विदेह सरस्वती नदी में कूद गया। फलतः विदेघ के मुख से बाहर निकली हुई वैश्वानराग्नि की प्रचण्ड-ज्वाला ने सरस्वती नदी के समस्त जलों को सुखाते हुए पूर्व दिशा की ओर बढ़ता हुआ इस पृथ्वी पर उस ओर जो कुछ भी था सबको जलाता हुआ उत्तर दिशा में हिमालय की ओर जाकर शान्त हुआ। मात्र सदानीरा[7] नदी का आस्वादन नहीं किया, शेष समस्त नदियों के जलों को सुखा दिया। इस प्रकार सदानीरा के पूर्ववर्ति प्रदेशस्थ नदियों को दग्ध कर दिये जाने के उपरान्त मथु (पौराणिक भाषा में मिथि) के पुत्र माथव राजा विदेघ (विदेह) [8] ने अग्नि से कहा कि—**क्वाहं भवानि?** मैं कहाँ रहूँ? इसपर वैश्वानर अग्नि ने विदेह से कहा कि

4 मनुस्मृति, 2.23 5 शतपथब्राह्मण, काण्ड 1, अध्याय 4, ब्राह्मण 1 6 ऋग्वेद, 5.26.2

7 जिस नदी में सर्वदैव जल प्रवाहित होता है वह सदानीरा नदी कहलाती है। अमरकोष में करतोया सदानीरा बाहुदा सैतवाहिनी (अमरकोष-1/10/33) कहा गया है। महाभारत में — अथादौ कर्कटे देवि! त्र्यहं गङ्गा रजस्वला। सर्वा रक्तवहा नद्यः करतोयाम्बुवाहिनी॥ (महाभारत— 2/20/27) के द्वारा यह कहा गया है कि जब सूर्य कर्क राशि में होते हैं तब तीन दिन गङ्गानदी तथा मासभर अन्य नदियाँ रजस्वला रहती हैं। किन्तु करतोया नदी कभी रजस्वला नहीं होती, अर्थात् सदा शुद्ध जलों से युक्त रहती है। ध्यातव्य हो कि यह सदानीरा नदी कोशल एवं विदेह दोनों देशों की मर्यादा (सीमा) पर स्थित है।

8 यहाँ हकार का घकारादेश हुआ है, म. म. मुकुन्दझा बख्शीकृत निरुक्त टीका की पादटिप्पणी 6, पृष्ठ 3, द्रष्टव्य है।

—**अत एव ते प्राचीनं भुवनमिति**[9] सदानीरा नदी के पूर्व तट से लेकर पूर्वदिशा की ओर जो मेरे द्वारा आस्वादित भूमि हैं वे तुम्हारे हैं। अतः सिद्ध हुआ कि मिथिला की भूमि यज्ञीय भूमि है।

भगवान् शिव यज्ञीयदेश मिथिला में मिथिलाधिपति राजर्षि जनक के घर से दो योजन (चार कोश, 12 किलोमीटर) की दूरी पर समस्त पापों का हरण करने वाला शरविन्दु नामक सरोवर जिसके पश्चिम में कमला नदी बहती है, के दक्षिण भू-भाग पर गये। वहाँ सती का उदरप्रदेश गिरा था, भगवान् शिव ने भी नाभि सहित अपना उदर वहाँ संस्थापित किया। इस वृत्तान्त को देखकर कमलासनस्थ भगवान् ब्रह्माजी तथा क्षीरशायी भगवान् विष्णु वहाँ पहुँचकर दोनों हाथों को जोड़कर भगवान् शिव को प्रसन्नकर उनसे निवेदन करने लगे कि-

किमिदं क्रियते नाथ देहपातनमद्भुतम्।
वस्तुतस्ते न देहोऽस्ति पातनं तस्य वै कुतः॥[10]

अर्थात् हे परमेश्वर! आप यह क्या कर रहे हैं? वस्तुतः आपके तो देह हैं ही नहीं, तो देह का निपातन कैसे हो सकता है? तथापि हे शङ्कर! आप संसार को धारण करने के उद्देश्य से देहवान् हैं। भगवान् शिव ने उन दोनों के वचन को सुनकर मुसकाते हुए कहा— हे भगवान् ब्रह्माजी! एवं भगवान् विष्णु! संसार के लोगों के उपकार के लिये मैं अपने शरीर के अङ्गों को पृथ्वी पर यत्र-तत्र गिरा रहा हूँ। पहले इस धरती पर विन्दुसर नामक सनातन तीर्थ था। अब इस शरविन्दु सरोवर में मेरा एवं पार्वती दोनों के उदराङ्गगिरे हैं, इससे यह स्थान अत्यन्त विशिष्ट हो गया है। इस सरोवर में एवं कमला नदी में स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्यादि महापातकों से भी निवृत्त हो सकेगा। जिसकी जो भी मनोकामनायें होंगी पुत्र-पत्नी-धन आदि वे समस्त कामनायें यहाँ मास पर्यन्त रहकर मेरी आराधना करके मनुष्य प्राप्त कर सकेगा, इसमें कोई संशय नहीं। यह सरोवर अब मणिकर्ण के समान पुण्यप्रद हो गया है। मैं विश्वेश्वर स्वयं यहाँ रहकर सबको मुक्ति प्रदान करूँगा। मृतों को मुक्ति देने के लिये इस सिद्धिक्षेत्र में मेरा वास रहेगा। जो कोई पुरश्चर्या विधि से यहाँ भक्तिभावपूर्वक अनुष्ठान करेगा उसके कार्य की सिद्धि अतिशीघ्र ही होगी। ऐसा कहकर भगवान् शिव अपने स्वाश्रय को प्रस्थान किये। तत्पश्चात् ब्रह्माजी एवं विष्णुभगवान् ने वहाँ एक शिवलिङ्गप्रतिष्ठापित करके अपने धाम को गये। इस प्रकार से यह शिलानाथ साक्षात् भक्तवत्सल भगवान् शिव ही हैं।

पण्डित विष्णुशर्माजी ने उस सुप्रसिद्ध सिद्धिदायक एवं अत्यन्त पुण्यप्रद शिलानाथ नामक स्थान में जाकर ब्रह्मचर्य व्रतपालनपूर्वक एक वर्ष तक रहकर भगवान् शिव की आराधना की। तपस्या के एक वर्ष बीतने के उपरान्त भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर पण्डित विष्णुशर्माजी के स्वप्न में आये और बोले—

9 शतपथब्राह्मण, 1.4.1.17

10 भगवद्भक्तिमाहात्म्यम्, चन्द्रदत्तविरचित, सर्ग-47 (विष्णुशर्मचरितम्), श्लोक-21, बाबूरामशर्मा (सम्पादक), राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान, दिल्ली, 2012ई., पृ. 214.

परितुष्टोऽस्मि ते भद्र ! तवाराधनतो द्विज।
वैष्णवं मन्त्रराजं ते ददामि सर्वसिद्धये॥[11]

हे भद्र भक्त! मैं तुम्हारी आराधना (तपस्या) से पूर्ण सन्तुष्ट होकर तुम्हें मन्त्रों का राजा तथा समस्त प्रकार की सिद्धियों को देनेवाला यह वैष्णवमन्त्र प्रदान करता हूँ।

भुक्त्वा भोगानशेषांस्तु मृतो मोक्षमवाप्स्यसि।
तवास्ति दीर्घमायुष्यं पुनर्दारपरिग्रहः॥
भविष्यति शुभा तत्र सन्ततिर्वंशवर्द्धिनी।[12]

स्वप्न में यह कहकरभगवान् अन्तर्धान हो गये। पण्डितजी जब जागे तो स्वप्न के विषय में विचारते हुए अत्यन्त विस्मित हुए और यह सब कैसे होगा? इस चिन्ता में पड़ गये। भक्तवत्सल भगवान् भोलेनाथ से प्राप्त उस मन्त्रराज का अहर्निश जप करते हुए भगवान् की आराधना में तल्लीन हो गये।

एक दिन शिवरात्रि के अवसर पर पण्डितजी के ग्रामीणलोग भी वहाँ पूजा एवं दर्शनार्थ पधारे थे। उनलोगों ने भगवान् शिलानाथ की विधिवत् पूजा करके पण्डित विष्णुशर्माजी को देखकर उनके पास आकर अनेक प्रकार की बातें कहकर उन्हें सन्तुष्ट करके अपने ग्राम ले गये। अपने पैतृक गाँव में जाकर जहाँ पहले घर था वहाँ से भिन्नस्थानपर आवास बनाकर रहने लगे। पश्चात् भगवान् के द्वारा कहे गये समस्त सुखों का भोग करके पण्डित विष्णुशर्माजी पुनः गृहस्थधर्म अपनाकर, कुलीन वंश में उत्पन्न स्त्री का पाणिग्रहण कर, विलक्षण पुत्र—पौत्रदि सन्ततियों से युक्त होकर, वैष्णवप्रवर होकर गार्हस्थ्यधर्म का पालन करने लगे।

तत्पश्चात् पण्डितजी ने भगवान् के पुण्यचरितों से परिपूत भक्तिरत्नावली नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। उस ग्रन्थ को भगवान् जगन्नाथ को सुनाकर, उन्हें समर्पित करके, काशीस्थित बिन्दुमाधव की सन्निधि में रहते हुए भगवान् जगन्नाथ को हृदय में धारणकर विष्णुभगवान् के परमपुण्यप्रदायक द्वादशाक्षरी मन्त्र का जप करते हुए आनन्दकानन में रहने लगे।

कुछ दिन बीतने के उपरान्त एकबार भगवान् जगन्नाथ स्वयं अपने पुजारियों से बोले कि विष्णुशर्माविरचित जो 'भक्तिरत्नावली' है, वह मुझे प्रदान करो। वह ब्राह्मण सम्प्रति काशी में वास करता है, उसे मेरे नाम से पत्र लिखो कि वह कृति यहाँ भेज दे। जबतक 'भक्तिरत्नावली' नहीं आयेगी, तब तक इन मणिनिर्मितमालाओं को मैं धारण नहीं करूँगा। भक्तगण जगन्नाथपुरी के राजा के पास जाकर यह वृत्तान्त सुनाये, किन्तु राजा के स्वप्न में भी भगवान् जगन्नाथ ने विष्णुशर्मा द्वारा विरचित 'भक्तिरत्नावली' मेरा अत्यन्त प्रिय है, वह लाकर मणिमाला की तरह मेरे कण्ठ में नियोजित करो, ऐसा कहा था। राजा ने भी लोगों के समक्ष इस बात का प्रकाशन किया।

11 भगवद्भक्तिमाहात्म्यम्, तदेव, 34-35, पृ. 215-216

12 भगवद्भक्तिमाहात्म्यम्, तदेव, 36-37, पृ. 216.

इस स्वप्न से चिन्तित होकर सभी लोग भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में आये तो लोगों ने देखा कि यहाँ भगवान् के गलें में जो मणियों की माला थी वह टूटकर भूमि पर विखरी पड़ी हुई है। यह दृश्य देखकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् राजा ने विष्णुशर्मा के नाम से पत्र लिखा और कुछ भक्तलोगों को पत्र देते हुए निर्देश दिया कि आपलोग यथाशीघ्र विष्णुशर्माजी के पास पहुँचकर यह पत्र देकर उनसे 'भक्ति-रत्नावली' लेकर आइये। वे लोग विष्णुशर्मा को पत्र प्रदान करते हैं, विष्णुशर्माजी ने पत्र को अपने मस्तक से लगाया और उन लोगों की पाद्य-आसन -अर्घ आदि द्वारा अतिथि सत्कार करके अभिवादनपूर्वक सहर्ष स्वलिखित 'भक्ति-रत्नावली' उनलोगों को प्रदान किया।

विष्णुशर्मा से भक्तिरत्नावली लेकर उनलोगों ने द्रुतगति से आकर राजा को समर्पित किया। राजा भगवान् जगन्नाथ के पास आकर समस्त भक्तिरत्नावली का पाठ करके उसने श्रीभगवान् को सुनाया। राजा को पुनः भगवान् ने स्वप्न में दर्शन दिया और कहा कि भक्तिरत्नावली के श्लोकों से अङ्गुलियाँ बनाकर, उसका ग्रथन करके माला बनाकर मुझे शीघ्र प्रदान करो तब मैं प्रसन्न होऊँगा। भगवान् के ऐसा कहने पर दूसरे दिन प्रातः उठकर राजा ने वैसा ही किया, भगवान् को 'भक्तिरत्नावली' की माला बनाकर समर्पित किया। तब श्रीभगवान् प्रसन्न हुए और अन्य मालाओं को भी धारण किये। इस प्रकार का प्रभाव विष्णुशर्माजी की भक्ति का है। इस भक्ति के माहात्म्य का जो कोई भी भक्त पूर्ण श्रद्धाभाव से श्रवण करेगा, वह समस्त पापों से मुक्त होकर भगवान् की अनन्य भक्ति प्राप्त करके समस्तलोकविश्रामस्थल में शरण प्राप्त करेगा।

भक्तवत्सल भगवान् की जय।

परमहंस विष्णुपुरी की एक कृति विष्णुभावोपहार की नवोपलब्ध पाण्डुलिपि
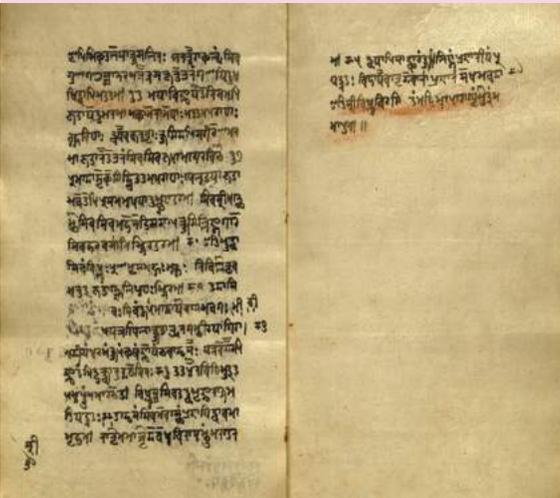
यह परमहंस विष्णुपुरी कृत व्याख्या सहित **विष्णुभावोपहारस्तोत्र** की पाण्डुलिपि है। यह पाण्डुलिपि ओरियंटल रिसर्च लाइब्रेरी कैंपस, हजरतबल, श्रीनगर में संरक्षित है। इस पाण्डुलिपि की डिजिटल प्रति https://archive.org/ पर 2371.1 Anandeshwar Bhairava Stotra Bhavopahara Stotra Vivritti Vishnu Bhav-opahara Vishnupuri Sharada Manuscript के नाम से उपलब्ध है। पाण्डुलिपि के अंतिम पृष्ठ पर दी गयी सूचना के अनुसार इसमें आनन्देश्वर भैरव स्तोत्र के साथ उपर्युक्त स्तोत्र भी है। इसके सम्पादन तथा प्रकाशन की अपेक्षा है।

परमहंस विष्णुपुरी और उनके स्थानीय स्मारक

श्री विजय कुमार झा

तरौनी ग्रामवासी एवं विमानन अभियंता,
वर्तमान पता— पॉकेट 13, 333, फेज 1 द्वारका, पालम नई दिल्ली, मोबाइल— 9810099451

आज भी परमहंस विष्णुपुरी का डीह विद्यमान है। वहाँ एक पाकड़ का वृक्ष है, जो ग्रामीणों की आस्था का केन्द्र है। अपने बच्चे के अक्षरारम्भ के लिए वे वहाँ की मिट्टी ले जाते हैं। इस डीह के बगल होकर जीबछ नदी की एक शाखा बहती है, जो विगत शताब्दी तक प्रवहमान रही है। पुरातत्त्व के सर्वेक्षणकर्ता श्री मुरारीकुमार ने उनके डीह से एक मृद्भाण्ड का अन्वेषण किया है जिसपर कुछ अक्षरों के अंश हैं। इसी ग्राम के निवासी लेखक ने इस गाँव में उनकी भक्ति-परम्परा में हुए अन्य गोसांई या उल्लेख किया है, जिनमें रोहिणदत्त गोसांई की संस्कृत कृति उपलब्ध हुई है, जिनका सम्पादन अपेक्षित है।

दूरान्निशम्य महिमानमुपेत्य पार्श्व-
मन्त: प्रविश्य शुभभागवतमृताब्धे:।
पश्यामि कृष्णकरुणाञ्जननिर्म्मलेन
हल्लोचनेन भगवद्भजनं हि रत्नम्॥

उपरोक्त श्लोक की माध्यम से विष्णुपुरीजी महाराज कहते हैं– मैं दूर से श्रीमद्भागवतरुपी अमृत सदृश की महिमा सुनकर जब उसके पास पहुँच कर (पढ़कर) उसमें प्रवेश किया, तो उसमे उसके गूढ़ रहस्य को समझकर श्रीकृष्ण की कृपारूपी अंजन से निर्मल हुए हृदय रूपी लोचन से भगवद्भजन रूप को देखा। इसका तात्पर्य यह है कि मैने पहले सत्पुरुषों से श्रीमद्भागवत की महिमा सुनी, बाद में पढ़कर इस रहस्य को जाना कि श्रीमद्भागवत का एकमात्र सार भागवत भजन ही है।

तदिदमतिमहार्घं भक्तिरत्नं मुरारे-
रहमधिकसयत्न: प्रीतये वैष्णवानाम्।
हृदि गतजगदीशादेशमासाद्य माद्य-
न्निधिवरमिव तस्माद्वारिधेरुद्धरामि॥

अर्थात् इसलिए हृदयस्थ जगदीश के आदेश से वैष्णवभक्तों की प्रीति के निमित्त समुद्र से रत्नों के समान प्रयासपूर्वक इस अनमोल भगवदभक्तिरूपी रत्न को श्रीमद्भागवतरुपी समुद्र से निकाल रहा हूँ।

महान् वैष्णव सन्तशिरोमणि विष्णुपुरीजी का जन्म वर्तमान बिहार राज्य के दरभंगा जिलान्तर्गत तरौनी ग्राम में सन 1440 के आसपास हुआ था। तरौनी ग्राम के कर्महे मूल के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सौभाग्यवश मेरी मातृभूमि भी तरौनी होने के कारण मैंने विष्णुपुरीजी महाराज के परवर्ती समाज का अनुभव और उनके प्रभाव को बहुत करीब से परखा है। ग्राम इतिहास प्रमाणिक दृष्टिकोण से इनसे पूर्व का अद्यतन अपने शोध मे मुझे नहीं मिल पाया है। अत: यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि तरौनी का इतिहास वैष्णव सन्त विष्णुपुरीजी से ही शुरू होता है।

डीह से प्राप्त मृद्भांड का टुकड़ा

डीह पर स्थित पाकड़ का वृक्ष

इनके कोई वंशज वर्तमान में इस ग्राम में निवास नहीं करते हैं। प्राय: मिथिला के अन्यत्र गावँ में हैं, जिनकी पुष्टि मैंने की है। वर्तमान में भी इनकी मूल डीह (जन्मस्थली) गाँव में विद्यमान है, जो बिहार सरकार के अधीनस्थ है। सम्पूर्ण डीह निर्जन है। डीह पर एक पाकड़ का विशाल वृक्ष है, जिसकी मान्यता है कि यह वृक्ष सन्त विष्णुपुरी के समय से ही है। डीह के पश्चिम एक नदी के धारा का अवशेष दिखता है, जिसे ग्रामीण 'गोगरा धार' कहते हैं। मूल रूप से यह धार वर्तमान में 10 किलोमीटर दूरस्थ जीबछ धार से निकलकर बहती थी, ऐसा प्रतीत होता है।

काशी जाने की परम्परा भी श्रीविष्णुपुरीजी से ही शुरू होती है, यह ग्राम की जनश्रुति है। मिथिला की ही यह परम्परा रही है, परन्तु स्थानीय रूप में इसका श्रेय श्री विष्णुपुरीजी को दिया जाता है। गृहस्थाश्रम में रहकर सन्त वा गोसाईं बनने की परम्परा विष्णुपरी के निज ग्राम मे रही है। वर्तमान में भी उनके डीह पर एक भव्य मंदिर बनाने की योजना ग्रामीणों द्वारा की गई कार्य भी शुरू हुआ यज्ञादिपूर्वक कार्य शुरू होकर भी मंदिर-निर्माण अपनी आधी यात्रा ही तय कर सका है। रास्ते की जमीन विवाद के कारण यह योजना अधूरी रह गयी है। इनका डीह करीब 5 बीघे में है जो धाम बनने की क्षमता रखता है। परन्तु वाट जोह रहा है कृष्णभक्तों का, जो बंगाल के चैतन्य एवं आसाम के शंकरदेव की भक्तिपरम्परा के प्रेरणास्रोत रहे हैं।

इस गौरवशाली व्यक्ति के निवासस्थल— डीह की चिकनी मिट्टी से बच्चों का अक्षरारम्भ करया जाता है जिसकी परम्परा गाँव में अभी भी है। अन्य गाँव के भी लोग मिट्टी ले जाने की परम्परा निभा रहे हैं। ग्रामीण के बीच उनके अवतरण को भगवान का अवतरण ही माना जाता है। विष्णुपुरीजी प्रथम शैव एवं कालान्तर में एक वैष्णव सन्त रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष में विख्यात हुए। ग्राम में अनेकानेक शिवालय एवं राधाकृष्ण के मन्दिर हैं, जो प्राचीन हैं और इनके द्वारा धर्मप्रचार के परिणाम प्रतीत होते हैं।

परवर्ती प्रभाव

इनकी कृष्णभक्ति का प्रभाव इस ग्राम की परम्परा पर पड़ी है और अनेक परवर्ती गोसाईं सन्त इस धारा में हुए हैं। इस ग्राम में प्रसिद्ध वैष्णव रोहिणीदत्त गोसाँई 17-18वीं शताब्दी में हुए, जो कृष्ण के अनन्य भक्त थे और नित्य कृष्ण की पूजा उपासना करते थे। इनके द्वारा रचित अनेक श्लोक कृष्णभक्ति पर लिखित प्रमाणिक मिले हैं, जो विष्णुपुरीजी के द्वारा स्थापित परम्परा का एक रूप है। इनकी कृष्णसंबंधी 4 रचनाओं की पाण्डुलिपि बरौनी ड्योढ़ी से श्री रतिकान्त मिश्र के घर में मिली है, जिनमें 'प्रशस्तिश्लोक', 'कृष्णलीला' आदि नाम से रचनाएँ 21 पत्रों में मिली है। इनका प्रकाशन संपादन अपेक्षित है। कहा जाता है कि ये गोसाँई केवल संस्कृत बोलते थे। इनका एक श्लोक प्रचलित है-

आयाहि हृदयारण्यमसन्मतिकरेणुके।
आयाति याति गोविन्दभक्तिकण्ठीरवी यतः॥

सन्त कवि दुर्बुद्धि रूपी हथिनी को ललकारते हैं कि तुम मेरे हृदयरूपी जंगल में आओ, आओ, क्योंकि यहाँ गोविन्द की भक्तिरूपी सिंहनी आया-जाया करती है।

रचना इस महान् गोसाई का भी अवसान काशी में विश्वनाथ के समीप हुआ था।

इसी परम्परा में श्री रघुवर झा गोसाईं एवं श्री कमलादत्त गोसाईं दोनों समकालीन हुए। वे राधा-कृष्ण के अनन्य भक्त थे। दोनों गोसाईं का प्रादुर्भाव 19 वीं शताब्दी एवं अवसान 20 वीं शताब्दी में हुआ। वर्तमान में भी इन दोनों गोसाईं द्वारा स्थापित निज ग्राम तरौनी में राधाकृष्ण मंदिर में नित्य पूजा अर्चना होती है। राधाकृष्णभक्ति की परम्परा जो श्रीविष्णुपुरी द्वारा स्थापित की गयी थी वह परम्परा आजतक चलती आ रही है।

ग्राम में कृष्णझूला, जिसे झूलन कहा जाता है, प्रत्येक वर्ष रक्षाबन्धन से चार दिन पहले शुरु होती है और रक्षाबन्धन के दिन समाप्त होती है। यह परम्परा यहाँ प्राचीन काल से चलती आ रही है।

***

परमहंस विष्णुपुरी द्वारा स्थापित शिलानाथ महादेव

चित्र साभार : श्री रमणदत्त झा

शिलानाथ मन्दिर के पास कमला नदी, जिससे परमहंस विष्णुपुरीजी को शिवशिला प्राप्त हुई थी।

दोनों चित्र साभार : श्री दिलीप कुमार झा

शिलानाथ मन्दिर का वर्तमान स्वरूप

परमहंस विष्णुपुरी द्वारा स्थापित शिलानाथ महादेव

'भक्तिरत्नावली' के आलोक में

मानव-जीवन में नवधा भक्ति का प्रबन्धन

डा. लक्ष्मीकान्त विमल

मूलतः भारतीय दर्शन के परम्परागत अध्येता,
वरिष्ठ शोधाध्येता, श्री शंकर शिक्षायतन, नई दिल्ली।

नवधा भक्ति की दार्शनिक व्याख्याताओं में से अन्यतम परमहंस विष्णुपुरी की एक अन्य कृति विष्णुभावोपहार एवं उसकी व्याख्या की शारदा लिपि की पाण्डुलिपि भी मिली है, किन्तु अभीतक इसका सम्पादन नहीं हो सका है। वर्तमान में केवल एक कृति कान्तिमाला व्याख्या सहित भक्तिरत्नावली उनकी कृति के रूप में प्रकाशित है। इसमें यद्यपि उन्होंने भागवत को आधार मानकर भक्ति के नौ अंगों की व्याख्या की है, किन्तु इनकी यह व्याख्या विशुद्ध दार्शनिक है। उन्होंने श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वंदन, पादसेवन, दासता, पूजन, ध्यान तथा आत्मनिवेदन इन भक्ति-स्वरूपों की परिभाषा तथा उदाहरण देकर समझाने का प्रयत्न किया है। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में 13 विभाग (विरचन) हैं। यहाँ लेखक ने सम्पूर्ण ग्रन्थ का परिचय देते हुए विष्णुपुरी के मतानुसार नवधा भक्ति का प्रतिपादन किया है।

भागवद्भक्त विष्णुपुरी ने 'भक्ति-रत्नावली' नामक ग्रन्थ लिखा है। इस में 'भागवत' महापुराण के वचनों को कारिका के रूप में उद्धृत किया गया है। जिस पर भगवद्भक्त विष्णुपुरी ने 'कान्तिमाला' नामक संस्कृत टीका का प्रणयन किया है। नवधा भक्ति को समझाने के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त ही उपयोगी है। ग्रन्थ में अध्याय को बतलाने के लिए 'विरचनम्' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें तेरह 'विरचनम्' हैं। पहले 'विरचनम्' में 116 कारिका हैं तथा ग्रन्थ का यह भाग भूमिका के रूप में प्रयुक्त हुआ है। दूसरे 'विरचनम्' में भक्ति के कारण को बतलाय गया है एवं इस में 64 कारिका हैं। तीसरे 'विरचनम्' में भक्ति की विशेषता का वर्णन एवं 32 कारिका हैं। चौथे 'विरचनम्' में श्रवण का वर्णन है एवं 45 कारिका हैं। पाँचवें 'विरचनम्' में कीर्तन एवं 57 कारिका हैं। छठे 'विरचनम्' में स्मरण का वर्णन है एवं 26 कारिका हैं। सातवें 'विरचनम्' में पादसेवन का वर्णन है एवं 32 कारिका हैं। आठवें' विरचनम्' में अर्चना का वर्णन है एवं 9 कारिका हैं। नवमें में 'विरचनम्' में वन्दना का वर्णन है एवं 4 कारिका हैं। दसवें 'विरचनम्' में दास्य का वर्णन है एवं 4 कारिका हैं। ग्यारहवें 'विरचनम्' में दास्य का वर्णन है एवं 2 कारिका हैं। बारहवें 'विरचनम्' में निवेदन का वर्णन है एवं 2 कारिका हैं। तेरहवें 'विरचनम्' में सामान्य जन को भक्ति में प्रवेश का निरूपण एवं 16 कारिका हैं।

इस प्रकार 1-3 एवं 13 इन चार 'विरचनम्' में नवधा भक्ति की पृष्ठभूमि है एवं 4-12 'विरचनम्' तक नवधा भक्ति के एक-एक तत्त्वों का विवेचन प्राप्त होता है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में कुल 409 कारिका हैं। इसमें पहले विरचनम् में 4 तथा चौथे विरचनम् में 6 कुल 10 पद्य विष्णुपुरी के हैं एवं हरिभक्तिसुधा से 2 पद्य है। कुल 12 हुए । 409 से 12 घटाने पर शेष 397 पद्य भागवतमहापुराण के ही हैं।

नवधा भक्ति

भक्तराज प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु को सम्बोधित करते हुए कहता है कि भगवान् के प्रति नवधा भक्ति सबसे उत्तम अध्ययन है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥[1]

श्रवण- बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने अपनी धर्म पत्नी मैत्रेयी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि यह आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान किये जाने योग्य है। हे मैत्रेयि ! इस आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन एवं विज्ञान से इस संपूर्ण जगत् का ज्ञान हो जाता है।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेन सर्वं विदितम्।[2]

यहाँ बृहदारण्यकोपनिषद् में श्रवण को दूसरे स्थान पर रखा गया है। सामान्य मनुष्य वस्तु को देख कर ही उसके विषय में जानना चाहता है। वस्तु के दर्शन से ही श्रवण का महत्त्व बढता है। यहाँ श्रवण को पहला स्थान दिया गया है।

भागवत महापुराण में सूत के मुख से भगवद्भक्ति की कथा के प्रसंग में यह विचार प्राप्त होता है एवं भक्तिरत्नावली में श्रवण के अन्तर्गत समाहित किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण के यश का श्रवण और कीर्तन दोनों पवित्र करने वाले हैं। वे अपनी कथा सुनने वाले के हृदय में आकर स्थित हो जाते हैं और उनकी अशुभ वासनाओं को नष्ट कर देते हैं, क्योंकि वे सन्तों के नित्य सुहृत् हैं।

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विदुनोति सुहृत्सताम्॥[3]

संस्कृत में शुश्रूषा (सुनने की) भी श्रवण ही हैं। मानवजीवन में क्रिया एवं प्रतिक्रिया का कारण यही श्रवण है। भक्तिरत्नावली के इस विरचन में भागवत से अनेक प्रमाणों को श्रवण के पक्ष में उद्धृत किया गया है। इसमें भगवान् के प्रति कान नामक इन्द्रिय का उपयोग है ।

श्रवणया बहुभिर्यो न लभ्यः[4] कठोपनिषद् के इस वाक्य से श्रवण का उपनिषद् में स्पष्ट उल्लेख प्राप्र होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में **कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्**[5] का स्पष्ट है। यहाँ कहा गया है कि मैं कानों से खूब श्रवण करूँ।

श्रवण को परिभाषित करते हुए भगवद्भक्त विष्णुपुरी कहते हैं कि दूसरे भक्त के द्वारा भगवान् के नाम सुनना श्रवण कहलाता है। इस भक्ति में श्रवणेन्द्रिय का उपयोग होता है।

श्रवणं तन्नामादिशब्दानां परोक्तानां वा श्रोत्रेण ग्रहणम्।[6]

कीर्तन— भागवत के प्रथम स्कन्ध के पाँचवें

1 भागवत, 7.5.23
2 बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4.5
3 भागवत 1.2.17; परमहंस विष्णुपुरी, भक्तिरत्नावली, श्यामाचरणसंस्कृतग्रन्थावलि, ग्रन्थांक 1, अज्ञात अध्यापक (सम्पादक), प्रयाग पाणिनि कार्यालय, प्रयाग, 1914ई. पृ. 50, कारिका 1
4 कठोपनिषद्, 1.2.5
5 तैत्तिरीयोपनिषद् 1.4.1
6 भक्तिरत्नावली, उपरिवत्, कान्तिमाला, 3.2, पृ. 43

अध्याय में भगवान् के कीर्तन का प्रसंग है। भक्तप्रवर विष्णुपुरी ने कीर्तन के क्रम में प्रथम श्लोक के रूप में इस श्लोक को उद्धृत किया है। विद्वानों ने इस विषय का निरूपण किया है कि मनुष्य की तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दान का एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्यकीर्ति श्रीकृष्ण के गुणों और लीलाओं का वर्णन किया जाय।

इदं हि पुंस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवादः ॥[7]

भगवद्भक्त विष्णुपुरी कहते हैं कि भगवान् के नाम का अपने मुख से उच्चारण कीर्तन है— **तेषां स्वयम् उच्चारणम् ।**[8]

गीता में कीर्तन का स्पष्ट संकेत मिलता है। वहाँ कहा गया है कि जो दृढ निश्चय वाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए औअर मुझ को बार्-बार प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यान में युक्त हि=ओकर अनन्य प्रेम से मेरी उपासना करते हैं।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥[9]

उपनिषद् में कीर्तन में भगवान् के नामों का बार-बार अभ्याश किया जाता । अध्ययन में भी अभ्याश का महत्त्व है।

स्मरण— भागवत के दसवें स्कन्ध के सैतालिसवें अध्याय में भ्रमरगीत के प्रसंग में भक्तराज उद्धव गोपी को सम्बोधित कर के कहते हैं कि हे गोपियों ! तुम कृतकृत्य हो । तुम्हारा जीवन सफल है। देवियों ! तुम सारे संसार के लिए पूजनीय हो, क्योंकि तुमलोगों के इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण को अपना हृदय और अपना सर्वस्व समर्पित कर दिये।

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः।
वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः॥[10]

कान्तिमाला टीका में स्मरण की परिभाषा इअस प्रकार प्राप्त होता है। भगवान् के नाम और रूपों का मन से चिन्तन स्मरण कहलाता है।

स्मरणं तन्नामरूपादीनां मनसा चिन्तनम्॥[11]

पादसेवनम्— भागवत के सातवें स्कन्ध के सातवें अध्याय में नारादमुनि भक्तराज प्रह्लाद को गर्भावस्था में उपदेश देते हैं। उसी क्रम में यह पादसेवन संबन्धी सुललित विचार आया है। नारदमुनि भक्तराज प्रह्लाद को कहते है कि देवता, दैत्य, मनुष्य, यक्ष अथवा गन्धर्व कोई भी क्यों न हो, जो भगवान् के चरणकमलों का सेवन करता है, वह हमारे ही समान कल्याण का पात्र होता है।

देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च।
भजन् मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्याद् यथा वयम्॥[12]

भगवान् के विग्रह को प्रतिदिन सेवा भाव से परिचर्या करना पाद सेवन है।

पादसेवनं परिचर्याप्रतिमादौ साधारणम् ।[13]

अर्चनम्— इस का प्रसंग भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के चौथे अध्याय में आया है। इस अध्याय में नारदमुनि प्रचेताओं को उपदेश के क्रम में यह विचार आया है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ सींचने से उसके तना, शाखा, उपशाखा आदि सभी का पोषण हो

7 भागवत 1.5.22 ; भक्तिरत्नावली 5.1, उपरिवत्, पृ. 62
8 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला, 3.2, पृ. 43
9 गीता 9.14
10 भागवत 10. 47.23 ; भक्तिरत्नावली 6.1, पृ. 75
11 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला, 3.2, पृ. 43
12 भागवत7.7.50 ; भक्तिरत्नावली 7.1, पृ. 83
13 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला, 3.2, पृ. 43

जाता है और जैसे भोजन द्वारा प्राणों को तृप्त करने से समस्त इन्द्रियाँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार भगवान् की पूजा ही सबकी पूजा है।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥[14]

जल आदि से भगवान् की पूजा ही अर्चना है।

अर्चनं पूजा जलादिषु।[15]

अर्चना के संबन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण गीता मेम् कहते हैं कि जो जो सकाम भक्त जिस जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजन करता अहि, उस उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदध्याम्यहम्॥[16]

वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त होअक्र उस देवता का पूजन करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगों को निःसन्देह प्राप्त करता है।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान्॥[17]

देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त जैसे ही भजें, अन्त में वे मुझ श्रीकृष्ण को ही प्राप्त होते हैं।

देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।[18]

हे अर्जुन ! यद्यपि श्रद्धा से युक्त जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मुझ श्रीकृष्ण को ही पूजते हैं।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥[19]

इसी भाव को गीता में पुनः कहा गया है ।

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥[20]

वन्दनम्—

उपनिषत् में स्पष्ट कहा गया है कि परमतत्त्व का वर्णन शब्दों के द्वारा सम्भव नहीं है।

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कुतश्चनेति।[21]

यदि शब्द में सामर्थ्य नहीं है तो समस्त वाङ्मय ही व्यर्थ हो जायेगा। अतएव शब्दों के द्वारा ही उस परमतत्त्व की प्राप्ति होती है। स्तुति और वन्दना एक ही अर्थ की द्योतक हैं। देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र के प्रथम पद्यमे ही निषेधमुख से स्तुतिमहो, स्तुतिकथाः का उल्लेख मिलता है। महिम्नस्तोत्र में भी प्रथम पद्य में ही कहा गया है कि ब्रह्मादि देवता भी महादेव की स्तुति करने में में उपयुक्त नहीं हैं। मैं पुष्पदन्त अपनी बुद्धि के अनुरूप ही आपका वर्णन कर रहा हूँ-

महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येषस्तोत्रे हर! निरपवादः परिकरः॥[22]

संस्कृत साहित्य में स्तोत्र काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनेक स्तोत्रों के माध्यम से भक्त परमतत्त्व

14 भागवत4.4.14 ; भक्तिरत्नावली 8.1, पृ.91
15 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला, 3.2, पृ. 43
16 गीता 7.21
17 गीता 7.22
18 गीता 7.23
19 गीता 9.23
20 गीता 9.25
21 तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्द बल्ली, नवम अनुवाक 1
22 पुष्पदन्तकृत शिवमहिम्नस्तोत्र, प्रथम पद्य

तक पहुँच जाता है। अनेक मुनियों द्वारा भगवान् की स्तुति की गयी है। वेद में भी देवताविषयक अनेक मन्त्र उपलब्ध हैं।

नवधा भक्ति में वन्दना, स्तोत्रपाठ, रामायण पाठ. गीतापाठ पुराणपारायण, के महत्तव को प्रदर्शित करता है। वाल्मीकि-रामायण के सुन्दरकाण्ड में भगद्भक्त हनुमान जब लंका में माता सीतासे मिलते हैं, तो वहाँ राम के गुणगान को प्रस्तुत किया है। व्यावहारिक जावन में भी प्रशंसापरक वाक्य स्तुति ही है। भगवान् को प्रसन्न करने का एकमात्र साधन स्तोत्र है। भगवान् में समर्पित जीवन वाले का एक-एक शब्द ही स्तोत्र है— **स्तोत्राणि सर्वा: गिर:॥**[23]

इस पाठ के विषय में दो मत हैं। एक पक्ष का कथन है कि अर्थ सहित पाठ ही उत्तम पाठ है, परन्तु दूसरे पक्ष का मत है कि अर्थ रहित पाठ भी फलप्रद है, क्योंकि उस पाठक के पाठ में भगवान् की मनोहर लीला का प्रतिपादक अर्थ होता है। शब्द और अर्थ का नित्य संबंध है प्रयोक्ता उस शब्द का अर्थ जाने या न जाने, शब्द-अर्थ सम्बन्ध साथ-साथ चलता है।

भगवान् और भगवान् का स्वरूप अनन्त है। जितने शब्द से भक्त उनका स्मरण करता है उससे भी अधिक व्यापक भगवान् हैं। अतएव भगवान् के एक अंश का ही कथन संभव है। इसी मत को लेकर परमहंस विष्णुपुरी ने भक्तिरत्नावली में वन्दना की व्याख्या की है।

आत्मनिवेदन

आत्मनिवेदन में नवधा भक्ति के समस्त भावों का उपयोग सहजता से हो जाता है। महारानी द्रौपदी, भक्तराज ध्रुव, और गजेन्द्र आत्मनिवेदन के उदाहरण हैं। भघवान् ने गीता में स्पष्ट निर्देश किया है कि भक्त सभी धर्मों को त्याग कर एक मात्र मेरी शरण को प्राप्त करे। **सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**[24]

जो भक्त व्रज के 84 कोसों को दण्डवत् परिक्रमा करते हैं, वह भी आत्मनिवेदन का समुचित उदाहरण है। गीता में स्थितप्रज्ञ का जो लक्षण है वह आत्मनिवेदन का उदाहरण है। भगवान् कास्पष्ट निर्देश है कि जिस काल में पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भलीभाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही सन्तष्ट रहता है, उस काल में वहस्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मनो तुष्ट: स्थितप्रज्ञस्तथोच्यते॥[25]

भगवान् बार-बार अपने परायण होने के लिए भक्त को कहते हैं— आत्मानं मत्परायण:।[26]

परायण का अर्थ आश्रय होता है। जो भगवान् का भक्त है, वह सांसारिक व्यक्ति का आश्रय नहीं लेता है। भगवान् ने पाँच प्रकार के व्यवहार से आत्मनिवेदन की स्थिति को बतलाया है। भगवान् के लिए कर्म करना, भगवान् को ही अपना परम उपकारक समझना, भगवान् का भक्त होना, सांसारिक संबंधों से दूरी रखना और जीवमात्र के प्रति वैर भावना का परित्याग — ये आत्मनिवेदन है-

मत्कर्मकृन्ममत्परमो मद्भक्त: सङ्गवर्जित:।
निर्वैर: सर्वभूतेषु य: स मामेति पाण्डव॥[27]

आत्मनिवेदन में तल्लीन भक्त को भगवान् ने पण्डित की संज्ञा दी है। जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्प के होते हैं। जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्नि केद्वारा भस्म हो गये हैं,

23 शिवमानसपूजा, श्लोक 4— आत्मा त्वं गिरिजा मति: इत्यादि
24 गीता 18.66
25 गीता 2.55
26 गीता 9.34
27 गीता 11.55

उस महापुरुष को ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणां तमाहुः पण्डतं बुधाः॥[28]

भगवान् कहते हैं कि जिस यज्ञ में अर्पण के साधन भी ब्रह्म है, हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है, ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति प्रदान रूप क्रिया भी ब्रह्म है, उस ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।[29]

भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के अढ़तीसवें अध्याय में भगवान् के परम भक्त एवं कंस का मित्र अक्रूर जब व्रज जाने के लिए तैयार होते हैं । तब उनके हृदय में श्रीकृष्ण की वन्दना का मार्मिक प्रसंग आता है। अक्रूरजी अपने मन में विचार करते हुए कहते हैं कि अवश्य ही आज मेरे सारे अशुभ नष्ट हो गये। मेरा जन्म सफल हो गया। क्योंकि आज मैं भगवान् के उन चरणकमलों में साक्षात् नमस्कार करूँगा ।जो बड़े–बड़े योगी यतियों के भी केवल ध्यान के विषय हैं।

ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः।
यन्नस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम्॥[30]

भगवान् के विग्रह के समक्ष दण्डवत् प्रणाम करना। इस में शरीर के सभी अंगों का उपयोग होता है। **वन्दनं दण्डवत्प्रणामादिसर्वाङ्गैरभिवादनम् वा।**[31]

इसमें जिह्वा का उपयोग होता है।

दास्यम्— भागवत महापुराण के नौवें स्कन्ध के पांचवें अध्याय में दुर्वासा मुनि की दुःखनिवृत्ति के प्रसंग में दुर्वासा के ही शब्दों में दास्यभावा का वर्णन प्राप्त होता है। दुर्वासा मुनि कहते हैं कि जिनके मंगलमय नामों के श्रवणमात्र से जीव निर्मल हो जाता है। उन्हीं तीर्थपाद भगवान् के चरणकमलों के दास हैं । उनके लिए कौन सा कर्तव्य शेष रह जाता है।

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥[32]

भक्त के द्वारा भगवान् के प्रति किये जाने वाले समस्त कर्मों का समर्पण दास्य कहलाता है— **दास्यं कर्मार्पणम्।**[33]

सख्यम्— भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में ब्रह्मा के द्वारा भगवान् की स्तुति का प्रसंग है। वहाँ ब्रह्माजी कहते हैं कि अहो, नन्द आदि व्रजवासी गोप जनों के धन्य भाग्य हैं। वास्तव में उनका अहोभाग्य है। क्योंकि परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म आप उनके अपने सगे संबन्धी और सुहत् हैं।

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥[34]

कान्तिमाला टीका में भगवान् में दृढ़ विश्वास ही सख्य है— **सख्यं तद्विश्वासादि ।**[35]

गीता में अर्जुन ने इस सख्यभाव का निदर्शन किया है। अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण से कहते हैं कि आपके परम प्रभाव के न जानते हुए, आप मेरे सखा हैं ऐसा मानकर प्रेम से अथवा प्रमाद से भी मैंने 'हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे !' आप को कहा हूँ। उसके लिए आप मुझे क्षमा करें।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं-
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥[36]

28 गीता 4.18
29 गीता 4.24
30 भागवत10.38.06 ; भक्तिरत्नावली 9.1, पृ.93
31 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला, 3.2, पृ. 43
32 भागवत, 9.5.16 ; भक्तिरत्नावली 10.1, पृ.95
33 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला, 3.2, पृ. 43
34 भागवत, 10.14.32 ; भक्तिरत्नावली 11.1, पृ.98
35 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला, 3.2, पृ. 43

आत्मनिवेदनम्—

आत्मनिवेदन भक्ति की सर्वोत्तम अवस्था है। सामान्य जन इस स्थित को नहीं समझ सकता है। आत्मनिवेदन में निमग्न भक्त सांसारिक कोई कार्य नहीं करता है। वह भगवान् के गुणगान में शास्त्राध्ययन में भगवान् के मंदिर बनाने में लोगों को भगवान् के प्रति आस्था बनाने में निरन्तर लगा रहता है।

यह एक विशेष तथ्य है कि नवधा भक्ति की सूची में यह अंतिम अंग के रूप में प्रतिपादित किया गया है। इस प्रकार यह भक्ति का चरम अंग है। इसके बाद कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह जाता है। परम्परा में आगे भी इस आत्मनिवेदन का चरमत्व प्रदर्शित है। प्रख्यात वैष्णव सन्त गोविन्द दास ने भी कहा है-

श्रवण कीर्तन स्मरण वंदन पादसेवन दास।
पूजन ध्यान आत्मनिवेदन 'गोविन्ददास' अभिलास।[37]

भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के उन्तीसवें अध्याय में भगवद्भक्त उद्धव के द्वरा भागवतधर्मो का निरूपण के पसंग में आत्मनिवेदन का प्रसंग प्राप्त होता है । वहाँ भगवद्भक्त उद्ध्व ने अपने श्रीमुख से वर्णन करते हुए कहते है कि जिस समय मनुष्य समस्त कर्मो का परित्याग करके मुझे आत्मसमर्पण कर देता है, उस समय वह वह मेरा विशेष माननीय हो जाता है और मैं उसे उसके जीवत्व से छुड़ाकर अमृतस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति करा देता हूँ और वह मुझ से मिलकर मेरा स्वरूप हो जाता है।

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयाऽत्मभूयाय च कल्पते वै॥[38]

भक्तिरत्नावली की कान्तिमाला टीका में भगवद्भक्त विष्णुपुरी ने आत्मनिवेदनम् का अर्थ देहसमर्पण किया है। जिस प्रकार सामान्य मनुष्य शल्य चिकित्सक के एवं नापित के समक्ष अपने शरीर का समर्पण करता है उसी प्रकार भगवान् के विग्रह के समक्ष भक्त को शरीर का समर्पण करना चाहिए।

आत्मनिवेदनं देहसमर्पणम् ।[39]

भगवान् के प्रति भक्त किस विधि से देह का समर्पण करता है । इसके विषय में कान्तिमाला टीका में बहुत ही सुन्दर उदाहरण दिया गया है। टीकाकार कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति अपनी गाय और घोड़ा को बेच देता है तो वह उस गाय अथवा घोड़े के भोजन की चिन्ता नहीं करता है। उसी प्रकार जो भक्त भगवान् को अपना शरीर समर्पित कर दिया वह अपने भरण पोषण की चिन्ता नहीं करता है।

यथा विक्रीतस्य गवाश्वादेर्भरणपालनादि-चिन्ता न क्रियते तथा देहे तस्मै समर्प्य तच्चिन्तावर्जनम्।[40]

आत्मनिवेदन के विषय में अर्जुन का भगवान् के प्रति स्पष्ट घोषणा है कि हे प्रभो ! मैं शरीर को भलीभाँति चरणों में निवेदन कर, प्रणाम कर के, स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूँ ।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीश मीड्यम्।[41]

36 गीता 11.41
37 गोविन्द दास भजनावली, गोविन्द झा (सम्पादक), मैथिली अकादमी, पटना, 2007ई. नवधा भक्ति
38 भागवत, 11.29.34 ; भक्तिरत्नावली 12.1, पृ.99
39 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला, 3.2, पृ. 43
40 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला, 3.2, पृ. 43

इस प्रकार भक्तिरत्नावली में विरचन् 4 से 12 तक नवधाभक्ति से संबन्धित विषयों का प्रतिपादन किया गया है। अब क्रम प्राप्त 1 से 3 विरचनम् में वर्णित विषयों का प्रतिपादन किया जा रहा है।

'भक्तिरत्नावली' की विषयवस्तु

प्रथम विरचनम् में भक्तिरत्नावली की भूमिका है। इस में मुख्य रूप से भक्ति के माहात्म्य को रेखांकित किया गया है। इस में भी भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के चौथे अध्याय में श्रीशुकदेव के श्रीमुख से भागवत के कथारम्भ में षड्धा भक्ति का प्रसंग प्राप्त होता है: वहाँ कहा गया है कि जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजा जीवों के पापों को तत्काल नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण को बार-बार नमस्कार है।

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥[42]

दूसरे विरचनम् में भगवद्भक्ति के कारण का वर्णन किया गया है। भगवद्भक्ति में सत्संग प्रधान कारण है और परम कृपालु श्रीनारायण की करुणा की प्राप्ति ही परम फल है।

तत्र परम-कृपालु-श्रीनारायण-करुणाकल्प-वल्ली फलम्, सत्सङ्गः प्रधानम्।[43]

इस प्रसंग को दृढ़ करने हेतु भगवद्भक्त विष्णुपुरी ने भागवत महापुराण के वचन को संग्रहित किया है। वहाँ कपिम मुनि के द्वारा देवहूति के उपदेश के क्रम में यह प्रसंग प्राप्त होता है। कपिल मुनि कहते हैं कि सत्पुरुषों के समागम से मेरे पराक्रमों का यथार्थ ज्ञान कराने वाली तथा हृदय तथा कानों को प्रिय लगने वाली कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करने से शीघ्र ही मोक्ष मार्ग में श्रद्धा, प्रेम और भक्ति का क्रमशः विकास होगा ।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥[44]

दूसरे विरचनम् में भक्तराज प्रह्लाद अपने पिता को संम्बोधित करते हुए नवधा भक्ति का वर्णन करते हैं। उन्होंने कहा कि भगवान् के गुण-लीला-नाम आदि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चनम्, वन्दनम्, दास्यम् और आत्मनिवेदनम् ये नौ भक्ति के तत्त्व हैं।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदन॥[45]

तीसरे से बारहवें विरचन तक नवधा भक्ति के अंगों की व्याख्या की गयी है, जो पूर्व में वर्णित हैं।

तेरहवें विरचनम् में भक्तिरत्नावली की कान्तमती टीका में कहा गया है कि जो साधक वैदिक, लौकिक और अपने कुल के अनुकूल विहित साधनों से रहित हैं। उनके लिए भगवान् के श्रीचरण ही एक मात्र शरण है, ऐसा विचार करके जो भक्ति की जाती है। उसका वर्णन यहाँ किया गया है।

उक्त-वैदिक-लौकिक-स्वविहित-साधनहीनानां भगवच्चरण एव शरणम् इति।[46]

इस भक्ति के विषय में भक्तिरत्नावली में

41 गीता 11.44
42 भागवत2.4.15 ; भक्तिरत्नावली 1.2, पृ.1
43 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला टीका 2.1, पृ. 29
44 भागवत3.25.25 ; भक्तिरत्नावली 2.1, पृ.29
45 भागवत7. 5.23 ; भक्तिरत्नावली 3.1, पृ.43

भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में वर्णन मिलता है। भगवत के इस प्रसंग में भक्तिहीन पुरुषों की गति के अन्तर्गत यह विचार मिलता है। वहाँ करभाजन नामक मुनि के मुख से वर्ण्णन किया जाता है कि राजन्! जो मनुष्य 'यह करना बाकी है, वह करना आवश्यक है' इत्यादि कर्म वासनाओं अथवा भेदबुद्धि का परित्याग करके सर्वात्मभाव से शरणागतवत्सल, प्रेमवरदानी भगवान् मुकुन्द की शरण में आ गया है, वह देवताओं, ऋषियों, पितरों, प्राणियों, कुटुम्बियों और अतिथियों के ऋण से उऋण हो जाता है; वह किसी के अधीन, किसी का सेवक, किसी के बन्धन में नही रहता है।

देवर्षि-भूतात्मनृणां पितृणां
न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥[47]

विष्णुपुरी का परिचय—

मिथिला वैदिककालीन से पुण्यस्थान है। इस स्थान में निरन्तर योगी, संन्यासी, महामनीषी एवं सिद्धपुरुषों का आविर्भाव समय समय पर होता आ रहा है। इसी क्रम में भगवद्भक्त विष्णुपुरी का प्रादुर्भाव हुआ है। बिहार प्रदेश के मधुबनी जिला के तरौनी ग्राम में एक गृहस्थ माता-पिता के यहाँ रमापति नाम से एक बालक का अवतरण हुआ। ये वेदशास्त्र के तत्त्वज्ञ, कर्म में सतत तल्लीन, कुलीन गेरुआ रंग के वस्त्र को धारण करने वाले, शिखा और यज्ञोपवीत का त्याग करने वाले, भस्म को धारण करने वाले, हृदय में शंकर को रखने वाले संन्यासी थे। विष्णुशर्मा ही विष्णुपुरी नाम से प्रख्यात हुए। ये लोक कल्याण में हमेशा लगे रहते थे।

मिथिलायामभूद्विप्रो विष्णुशर्मेति विश्रुतः।
तिरौनी ग्रामवासी वंशो करमहाकुले॥
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः कुलीनः कर्मतत्परः।
गैरिकं परिधानीयमुत्तरीयं च गैरिकम्॥
विधाय भस्मभरणो दध्यौ चित्तेन शङ्करम्।
शिखासूत्रं च विभ्रष्टः संन्यासीव द्विजः स्थितः॥
विष्णुशर्मा तदारभ्य लोककल्याणतत्परः।
अथ यथाविधि संन्यासी लोके विष्णुपुरीति सः॥[48]

इनकी एकमात्र रचना भक्तिरत्नावली है। यह संकलन ग्रन्थ है परन्तु इस पर कान्तिमाला नाम की संस्कृत टीका भगवद्भक्त को अपनी ओर आकृष्ट करता है।

इस प्रकार नवधा भक्ति मानव जीवन में घटित होने वाले प्रतिदिन के व्यवहार में अनायास ही होता रहता है। पिता पुत्र के साथ, गुरु शिष्य के साथ, प्रेमी प्रेमिका के साथ यह व्यवहार चलता है।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥[49]

नवधा भक्ति में सबसे प्रधान स्मरण है अन्य आठों भक्तियाँ स्मरणपूर्वक ही होती हैं।

***

46 भक्तिरत्नावली, कान्तिमाला टीका 13.1, पृ. 100

47 भागवत11.5.41 ; भक्तिरत्नावली 13.1, पृ.100

48 चन्द्रदत्त विरचित भगवद्भक्तिमाहात्म्य, सर्ग 47, श्लोक 2-11, बाबूरामशर्मा (सम्पादक), राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2014, पृ. 213-14.

49 गीता 11.44

सनातन धर्म क्या है?

श्री राधा किशोर झा

विशेष सचिव, भारतीय प्रशासनिक सेवा, (अ.प्रा.)
क्वांटम डीएनआर. एपार्टमेंट, फ्लैट सं. 305, 70 फीट बाइपास, विष्णुपुर, पकरी 35 फीट, बिहार डिजिटल वर्ल्ड के पास, द्वारकापुरी, पटना-800002

लेखक की स्थापना है कि वेद, उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, पुराण, स्मृतियाँ आदि सभी ग्रन्थ एकमत से धर्म की व्याख्या करते हैं। यही उपनिषत्-प्रतिपाद्य धर्म वेदान्त धर्म है। वे कहते हैं— जो धर्म बोलता है वह सत्य बोलता है तथा जो सत्य बोलता है, वह धर्म बोलता है। मनुस्मृति कहती है— सभी प्राणियों को जो अपनी आत्मा में समाहित चित्त से देखता है, उसका मन अधर्म में नहीं लगता है। अर्थात् सभी प्राणियों को आत्मवत् देखना ही धर्म है। वासिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है— श्रुति-स्मृति-विहित आचार ही धर्म है जिसके अभाव में अकाम पुरुषों का आचार ही धर्म है। इस प्रकार, लेखक में सभी ग्रन्थों का निचोड़ निकालकर सन्दर्भों के साथ इस आलेख को पठनीय तथा प्रामाणिक बनाया है। आज सन्दर्भ हीन धर्म-विवेचन के कारण बहुत सारी भ्रान्तियाँ फैल रही हैं, जिनका निवारण लेखक ने किया है।

छान्दोग्य उपनिषद् का प्रारम्भ एक शान्तिपाठ से होता है, जिसमें ऋषि की प्रार्थना है कि सब कुछ उपनिषत्-प्रतिपाद्य ब्रह्म ही है, मैं ब्रह्म को नहीं भूलूँ, ब्रह्म भी मुझे न भूलें, अविस्मृति बनी रहे, उस आत्मा में तल्लीन रहता हुआ मुझ में उपनिषत्-प्रतिपाद्य धर्म सदैव वर्तमान रहे।[1]

यह उपनिषत् प्रतिपाद्य धर्म ही वेदान्त धर्म है, जिसे विवेकानन्द नेअपने व्याख्यान में कतिपय जगह कहा है कि यही हिन्दू धर्म है।[2] उपनिषद् वेद का भाग है। अतः वैदिक धर्म ही हिन्दू धर्म हुआ। मनु का कथन है—

धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः धर्म के जिज्ञासुओं के लिए श्रुति ही उत्तम प्रमाण है।[3] मनु ने पुनः कहा है— **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**— वेद धर्म का मूल है।[4] गौतम धर्मसूत्र में भी यहीं कहा गया है। (गौतम धर्मसूत्र, 1.1.1) तैत्तिरीय आरण्यक के महानारायणोपनिषत् में कहा गया है कि धर्म पाप को क्षय करता है— **धर्मेण पापमपनुदति**।[5] तैत्तिरीय श्रुति हमें आदेश एवं उपदेश देती है कि धर्म पथ पर चलो— **धर्मं चर**।[6] वसिष्ठ धर्मसूत्र भी कहता है कि **धर्मं चर माधर्मम्**।[7] धर्म पथ पर चल, अधर्म पर नहीं। अतः हमें जानना चाहिए कि वेद या वेदान्त प्रतिपाद्य धर्म क्या है?

1. छान्दोग्य उपनिषत् एवं केनोपनिषत् का शान्तिपाठ-ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वम् ब्रह्मौपनिषदम् माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणम् मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥
2. विवेकानन्द साहित्य, भाग 4. पृ. 344-345
3. मनुस्मृति, 2.13
4. मनुस्मृति, 2.6
5. महानारायणोपनिषत्, 79.7
6. तैत्तिरीय उपनिषत्, 1.11
7. वसिष्ठ धर्मसूत्र, 30.1

बृहदारण्य उपनिषद् में कहा गया है कि जब चार वर्णों के सृजन के बाद भी अभ्युदय नहीं हुआ तो परमात्मा ने श्रेय रूप धर्म का सृजन किया, यह धर्म राजाओं (क्षत्रियों) का नियन्ता है, अतः धर्म से श्रेष्ठ दूसरा कुछ नहीं है। बलहीन भी राजा की तरह इस धर्म की सहायता से बलवानों को जीतने की अभिलाषा रखता है। अतः जो धर्म बोलता है वह सत्य बोलता है तथा जो सत्य बोलता है, वह धर्म बोलता है।[8] अर्थात् सत्य ही धर्म है एवं धर्म सत्य है। धर्म की यह व्याख्या स्पष्ट रूप से वर्णधर्म की ओर संकेत करती है, इसे वर्णधर्म का सांकेतिक सूत्र कहा जा सकता है। इतना ही नहीं, इससे स्पष्ट होता है कि धर्म वह आचार है, जिसके अनुपालन से प्रजा का अभ्युदय एवं निःश्रेयस् दोनों प्राप्त होता है। (तुलना– कणाद का वैशेषिक दर्शन, 1.2) वेदान्त में सत्य की उपासना के लिए कहा गया है– सत्यं ब्रह्मेति उपासीत।[9]अतः हमें सत्य जानना चाहिए।

पुनः छान्दोग्य उपनिषद् के आठवें अध्याय में कहा गया है कि ब्रह्म का नाम सत्य है।[10] यह आत्मा है। यह अमर है, यह अभय है।[11]

इसी उपनिषद् के छठे अध्याय में एक रोचक उदाहरण देकर बताया गया है कि हे सौम्य, जिस प्रकार मिट्टी की जानकारी हो जाने पर मिट्टी के बने हुए सभी वस्तुओं यथा, घड़ा, खपड़ा, ईंट आदि वाणी के व्यापार मात्र हैं, वह मिट्टी का ही विकार है, वस्तुतः मृत्तिका ही सत्य है।[12] इस उदाहरण के कहने का तात्पर्य है यह है कि ब्रह्म ही सत्य है तथा यह जगत् व्यवहारमात्र है। इसी अध्याय में उल्लेख है कि वह जो अणिमा है, जिससे यह सारा जगत् आत्मवान् है वही सत्य है, वही आत्मा है। हे श्वेतकेतो! वही तू है। (तत्त्वमसि13) बृहदारण्यक उपनिषद् में भी याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद में कहा गया है "यह ब्राह्मण, यह क्षत्रिय, येलोग, ये देव, ये वेद, ये भूत (प्राणी) और ये सब जो कुछ भी है; यह सब आत्मा ही है।"[14] अर्थात् यह सबकुछ ब्रह्म ही है (सर्वं खल्विदं ब्रह्म[15]), यह सबकुछ आत्मा ही है (सर्वं ह्येतद् ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म[16]) यही सत्य है। इसी सत्य की अनुभूति जिस आचार के अनुष्ठान से होती है, वह धर्म है। विवेकानन्द ने अपने व्याख्यान में कहा है– "धर्म का अर्थ है आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान लेना, उसको प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर लेना और तद्रूप हो जाना।"[17]

मनुस्मृति में भी मनु का वचन है– सभी प्राणियों को जो अपनी आत्मा में समाहित चित्त से देखता है, उसका मन अधर्म में नहीं लगता है। अर्थात् सभी प्राणियों को आत्मवत् देखना ही धर्म है।[18] गीता (6.29) के अनुसार सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को और

8. बृहदारण्यकोपनिषद्, 1.4.14– स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति।

9. शतपथ ब्राह्मण, 10.6.3.1; बृहदारण्यकोपनिषद्, 6.2.15 (**ते य** एवमेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धा◌ं सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्नापूर्यमाणपक्षमापूर्य– माणपक्षाद्यान् षण्मासानुदङ्ङादित्य एति मासेभ्यो देव-लोकं देवलोकादादित्यमादित्याद्वैद्युतं तान्वैद्युतान् पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति ते तेषु ब्रह्मलोकेपु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः॥– बृहदारण्यकोनिषत्, 6.2.15); मुण्डकोपनिषद्, 2.2.2

10.छान्दोग्य, 8.3.4 11.छान्दोग्य, 8.3.4

12.छान्दोग्य, 6.1.4– यथा स◌ौम्य एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्। वाचारम्भणं विकारो नामधेयंमृत्तिकेत्येव सत्यम्॥

13.छान्दोग्य, 6.8.7– स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदँ सर्वं तत्सत्यँ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ 7 ॥

14.बृहदारण्यकोपनिषत्, 4.5.7 15.छान्दोग्य, 3.14.1

16.माण्डूक्योपनिषत्, 2 17.विवेकानन्द साहित्य, भाग-3, पृ. 248 (अनुदानित संस्करण)

18.मनुस्मृति, 12.118;Cp. जैनधर्म– दशवैकालिक सूत्र, 4.09

आत्मा में भी प्राणियों को देखनेवाला समदर्शी कहलाता है। मनुस्मृति में मनु ने कहा है कि सभी प्राणियों में समत्व का भाव ही धर्म है।[19] अर्थात् सभी प्राणियों में समत्व दृष्टि ही धर्म है। भागवत में सर्व समदृष्टि को सत्य कहा गया है। (सत्यञ्च समदर्शनम्[20] विष्णु-पुराण में सभी प्राणियों के प्रति समता की भावना को अच्युत की सच्ची आराधना बतलाया गया है।[21] इसी की ओर गीता कहती है कि सभी कथित धर्म का परित्याग कर एकत्व अर्थात् समत्व की शरण में जाओ।[22] पुनः गीता कहती है जो सभी प्राणियों में अवस्थित मुझको एकत्व भाव से भजता है वही योगी मुझ में अवस्थित है।[23] यही धर्म का मूल भाव है। यह जिज्ञासितव्य है, यही उपासितव्य है।

व्याकरण दृष्टिकोण से धर्म शब्द धृ धारणे धातु से निष्पन्न होता है— **ध्रियते लोकः अनेन इति धर्मः धरति धारयति वा लोकं इति धर्मः।** अर्थात् जो लोक को धारण करे वह धर्म है। वेद कहता है कि वह परमात्मा ही सबकुछ धारण करता है— स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।[24]

गीता कहती है कि मैं सभी प्राणियों को ओज से धारण करता हूँ।[25] इस दृष्टिकोण से भी परमात्मा स्वयं धर्म है। अथर्ववेद 12.1.17 में कहा गया है— ध्रुव भूमि जो समस्त ओषधियों की माँ है धर्म के द्वारा धारित की गयी है— विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवा भूमिं धर्मणा धृताम्।

विष्णुसहस्रनाम में भगवान् का एक नाम धर्म बतलाया गया है— धर्मो धर्मविदुत्तमः।[26] अर्थात् यह स्पष्ट हुआ कि धर्म परमात्मा का स्वरूप है।

अब धर्म का दूसरा स्वरूप भी हमें वेदान्त में दृष्टिगाचर होता है। प्रश्नोपनिषत् में कही गयी है— ऋषीणां चरितं सत्यम्। अर्थात् ऋषियों का आचार ही सत्य है, अर्थात् ऋषियों का आचार ही धर्म है।[27] मुण्डकोपनिषत् में कहा गया है कि सत्य ही जीतता है, अनृत नहीं— सत्य के द्वारा ही देवयान मार्ग व्याप्त है, जिसपर आप्तकाम ऋषि चलकर परमधाम को पहुँचते हैं।[28] सत्य गन्तव्य भी है और मार्ग भी।[29] अर्थात् सत्य जो आप्तकाम ऋषियों का आचार है धर्म है। वेद ऋषियों की आचार-संहिता है। वसिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है—**श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः। तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्। शिष्टः पुनरकामात्मा।** अर्थात् श्रुति-स्मृति-विहित आचार ही धर्म है जिसके अभाव में अकाम पुरुषों का आचार ही धर्म है।[30] मनुस्मृति में कहा गया है कि श्रुति-स्मृतिविहित आचार ही धर्म है, जिसके अनुपालन से वेद प्रतिपादित सभी फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) प्राप्त होते हैं।[31] मनु ने भी साधुओं के आचार को धर्म माना है।[32] इसकी पुष्टि आपस्तम्ब धर्मसूत्र से भी होता

19.मनुस्मृति, 6.66. 20.भागवत, 11.19.37 21.विष्णुपुराण, 1.17.90

22.गीता, 18.66. तुलनात्मक रूप से द्रष्टव्य— अंबेडकर, भीमराव, भगवान् बुद्ध और उनका धर्म, (1997) नागपुर, पृ. 244— "भगवान् बुद्ध का कहना था जो धर्म समानता का समर्थक नहीं, वह अपनाने योग्य नहीं है।"

23. गीता, 6.31 24. ऋग्वेद, 10.121.1

25.गीता 15.13— गामाविश्य च भूतानि **धारयाम्यहमोजसा** ।

26.विष्णुसहस्रनाम, श्लोक 54 27.प्रश्नोपनिषत्, 2.8

28. मुण्डकोपनिषत्, 3.1.6. सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पंथा विततो देवयानः॥ तेनाक्रमन्ति ऋषयो हि आप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥

29.सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥

30.वसिष्ठ धर्मसूत्र, 1.1 31.मनुस्मृति, 1.108-9 32.मनुस्मृति, 2.6.

है।[33] यह आचार सत्य पर आधारित है तथा सत्य के प्राप्त्यर्थ है। वह आचार क्या है? यह जानना चाहिए।

आचार की समग्र व्याख्या छान्दोग्य उपनिषत्[34] के मन्त्र (2.23.1) में की गयी है। यहाँ हमें आश्रम धर्म का सांकेतिक सूत्र मिलता है। यहाँ कहा गया है कि धर्म के तीन अंग हैं— यज्ञ, अध्ययन, दान— यह पहला अंग है, तप दूसरा अंग है तथा आचार्य कुल में रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन तीसरा अंग है।[35] अर्थात् सत्य (परमात्मा) धर्मरूपी वृक्ष का मूल है।[36] तथा यज्ञ, अध्ययन, दान तप और ब्रह्मचर्य व्रत ये तने एवं शाखाएँ हैं, जिसे इस प्रकार चित्रित किया जा सकता है—

इसी मन्त्र में कहा गया है कि ब्रह्म में स्थित रहने वाला अमृतत्व की प्राप्ति करता है— **ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति।** ब्रह्म सत्य है। सत्य ही ज्योति है, अमृत है, धर्म है।[37] यही आचार है और गन्तव्य भी। सत्याचार में ब्रह्मचर्य, यज्ञ, अध्ययन, दान और तप प्रतिष्ठित हैं। अब हम धर्म को जानने के लिए ब्रह्मचर्य, यज्ञ अध्ययन, दान तप, का क्रमशः वर्णन करेंगे ताकि वेदान्त प्रतिपाद्य धर्म को जान सकें। शतपथ ब्राह्मण में ब्राह्मण के चार धर्म बतलाये गये हैं— अर्चना, दान, इज्या (यज्ञ) और अहिंसा।[38]

ब्रह्मचर्य

वेदान्त में ब्रह्मचर्य की महिमा गायी गयी है। प्रश्नोपनिषत् में लिखा है जिसमें तप, ब्रह्मचर्य और सत्य प्रतिष्ठित होता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।[39] मुण्डक उपनिषत् में कहा गया है— सत्य, तप, सम्यक्, ज्ञान, नित्य ब्रह्मचर्य के द्वारा आत्मा की उपलब्धि होती है।[40] छान्दोग्य उपनिषद् भी कहती है ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।[41] अतः ब्रह्मचर्य को जानना चाहिए।

ब्रह्म वेद या परमात्मा को जानने के लिए जो व्रत का आचरण किया जाता है, ब्रह्मचर्य कहलाता है।ब्रह्मचारी के बारे में महात्मा गान्धी ने लिखा है—“a searcher after God.” ईश्वर की खोज करनेवाला। छान्दोग्य ब्राह्मण में ब्रह्मचारी के व्रतों का उल्लेख किया गया है। ब्रह्मचारी उपनयन के समय तप, तेज, श्रद्धा, ह्री, सत्य, अक्रोध, त्याग, धैर्य, धर्म, सत्त्व,

33. आपस्तम्ब, 1.20.7
34. छान्दोग्य उपनिषत् 2.23.1— त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः, तप एव द्वितीयः, ब्रह्मचारीआचार्यकुलवासी तृतीयः अत्यन्तम् आत्मानम् आचार्यकुले अवसादयन्; सर्वएते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थो अमृततत्वमेति॥
35. छान्दोग्य उपनिषत्, 2.23.1
36. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, 1— मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधे पूर्णेन्दुमानन्ददंवैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शङ्करंवन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूपप्रियम्॥
37. महाभारत, शान्ति पर्व, 190.5.
38. शतपथ ब्राह्मण, 11.5.7.1
39.प्रश्नोपनिषद्, 1.15
40. मुण्डक उपनिषद्, 3.1.5— सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मासम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रोयं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥5॥
41.छान्दोग्य, 8.4.3.

वाणी, मन, आत्मा एवं ब्रह्म की शरणमें जाने का संकल्प लेता है।[42] आपस्तम्ब धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र, एवं मनुस्मृति में विस्तारसे ब्रह्मचारियों के व्रतों का उल्लेख किया गया है, जिसे सुलभ जानकारी हेतु संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जाता है–

(क) दिन में शयन न करे।[43]

(ख) मैथुन का परित्याग करे।[44]

(ग) एकान्तशील रहे।[45]

(घ) ब्रह्मचारी व्यवहार में मृदु तथा दूसरे का दोष न देखे।[46]

(ङ) सत्यवादी, लज्जावान् और अनहंकारी हो।[47]

(च) काम, क्रोध, लोभ, मोह, परिवाद, जुआ, मधु, मांस, हिंसा, विना दिया हुआ द्रव्य, और अश्लील वार्ता का परित्याग करे। [48]

(छ) शान्त और दान्त हो।[49]

(ज) उपर्युक्त वृत्तों का पालन करते हुए उपनिषद् के साथ सम्पूर्ण वेद का विधिवत् अध्ययन करे।[50]

(झ) गुरु को प्रसन्न करने वाला कर्म तथा कल्याण प्राप्त्यर्थ कर्म करें।[51]

(ञ) अहिंसा व्रतका पालक हो। स्वाध्यायी हो।[52]

(ट) छान्दोग्य उपनिषद् में यज्ञ, सत्र, मौन, उपवास, अरण्यवास आदि को भी ब्रह्मचर्य कहा गया है।[53]

प्रायः ब्रह्मचर्य का अर्थ अविवाहित समझा जाता है, यह आंशिक सत्य है।सम्पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य की व्याख्या ऊपर की गयी है। यह जीवन की प्ारम्भिक अवस्था में विद्यार्थियों को यह शिक्षा दी जाती थी। ब्रह्मचारी न्यूनतम 25 वर्ष तक गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए सम्पूर्ण वेद का स्वाध्याय करते थे तथा आचार्य की सेवा करते थे। यह आश्रम के दृष्टिकोण से ब्रह्मचर्याश्रम कहलाता था।

यह आश्रम एक संस्कारशाला था। यहाँ मनुष्यों के स्वाभाविक दुर्गुणों कोे हटाकर सद्गुणों का संस्कार किया जाता था। वशिष्ठ धर्मसूत्र में ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, मान, मत्सर, पिसुनता, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, मोह, असूया, काम, क्रोध आदि को अधर्म कहा गया है।[54] इन्हें परित्याग करने का अभ्यास कराया जाता था। तथा सत्य अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शम, शान्ति, ह्री, आदि सद्गुणों को विकसित करने का अभ्यास कराया जाता था। साथ ही रहस्यसहित वेद की शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थी को यह बोध कराया जाता था कि वह वर्ण, आश्रम, लिंग, आदि भेद से मुक्त आत्मा है। आत्मवान् व्यक्ति ही धर्मरथ पर आरूढ़ हो सकता है। जिस प्रकार स्वर्ण संस्कार के पश्चात् वह मूल्यवान् हो जाता है, उसका सौन्दर्य निखर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा पश्चात् नये रूप धारण करता था। मनुस्मृति में कहा गया है कि आचार्यजिस जाति का सृजन करता है वह अजर और अमर होता है। अर्थात् उस ब्रह्मचारी को बोध हो जाता है कि वह किसी वर्ण, जाति, लिंग का नहीं है वह तो आत्मा है, जिसके अनुभव के लिए ही यह जीवन उसे मिला है यही जीवन का उद्देश्य है। भगवान् व्यास के अनुसारआश्रम व्यवस्था एक सीढ़ी/सोपान है जिसका

42.छान्दोग्य ब्राह्मण, 2.4.2
43.आपस्तम्भ धर्मसूत्र, 1.2.18
44.आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.2.26
45.तदेव, 1.3.14
46.तदेव, 1.3.17, 1.3.34
47.बौधायन धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.3.20
48.गौतम धर्मसूत्र, 2.19, 20,23;मनुस्मृति, 2.178
49.आपस्तम्ब, 1.3.18, 1.3.19
50.मनुस्मृति, 2.165
51.आपस्तम्ब, 1.5.9
52.मनु, 2.177
53.छान्दोग्य उपनिषद्, 8.5.1-3
54.वसिष्ठ धर्मसूत्र, 10.30

प्रथम सोपान ब्रह्मचर्याश्रम है, दूसरा सोपान गृहस्थाश्रम, तीसरा वानप्रस्थ तथा चौथा संन्यास है। क्रमशः इन्हीं सोपानों के द्वारा साधक अमरत्व की प्राप्ति करता है।[55]

यज्ञ, अध्ययन और दान

यज्ञ— हिन्दू धर्म में यज्ञ का स्थान अन्यतम है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को प्रजापति कहा गया है, अर्थात् प्रजा का पालन करने वाला। हिन्दू धर्म रूपी रथ के दो चक्के हैं— यज्ञ और तप। यज्ञ गृहस्थावस्था की रीढ़ है तथा तप ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम की रीढ़।इसके विना इन चारों आश्रमों का कोई महत्त्व नहीं।

बृहदारण्यक श्रुति में कहा गया है कि वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, तप और उपवास ब्रह्म की जिज्ञासा को उत्पन्न करता है।[56] इसकी पुष्टि ब्रह्मसूत्र[57] से भी होती है। गीता कहती है कि ब्रह्मा ने प्रजा की सृष्टि यज्ञ के साथ किया। (गीता, 3.10) इसकी पुष्टि शतपथ ब्राह्मण से भी होती है। यज्ञ, दान और तप से चित्त की शुद्धि होती है।[58] तथा शुद्ध चित्त में आत्मा की अमर-ज्योति प्रस्फुटित होती है।[59]

यज्ञ शब्द यज् धातु से नङ् प्रत्यय लगने से बना है, जिसका अर्थ होता है— पूजन, संगतिकरण तथा दान।[60] यज्ञ में तीनों का समाहार है। यज्ञमें दक्षिणा दी जाती है। दक्षिणा के विना यज्ञ अपूर्ण होता है। दक्षिणा दान है। यज्ञाग्नि में मंत्रसहित आहुति डालकर देवताओं का पूजन किया जाता है। वेद कहता है, स्तुतिविहीन आहुति देवता स्वीकार नहीं करते।कतिपय यज्ञों में स्तुति की संख्या अनगिनत होती थी।[61] शतपथ ब्र ाह्मण में कहा गया है— स्तुति ही यज्ञ है, अर्थात् यज्ञ में स्तुतिपूर्वक देवता के लिए आहुति विधिवत् दी जाती थी। यज्ञ में अनेक वस्तुओं का संग्रह करना पड़ता था। यह संग्रहकार्य भी यज्ञ कहलाता था।

यज्ञ का दूसरा तात्पर्य श्रौतसूत्र के दृष्टिकोण से इस प्रकार है। कात्यायन श्रौतसूत्र में कहा गया है कि यज्ञ एक श्रेष्ठ कर्म है, जिसमें देवता के लिए द्रव्य का त्याग किया जाता है।[62] छान्दोग्य उपनिषत् में कहा गया है कि समस्त जीवन ही यज्ञ है— पुरुषो वा व यज्ञः।[63] इस यज्ञ के तप, दान, सरल स्वभाव, अहिंसा और सत्यवचन दक्षिणा है।[64]शथपथ ब्राह्मण में कहा गया है— यज्ञ का शिर सत्य है तथा श्रद्धा उसका शरीर, मन यजमान है तथा वाक् यज्ञ।[65]गीता कहती है कि यज्ञ के विना सभी कार्य बन्धनकारक हैं। (गीता, 3.9) शतपथ ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय आरण्यक में पाँच महायज्ञों के नित्य अनुष्ठान करने के लिए कहा गया है—

देवयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, नृयज्ञ तथा भूतयज्ञ।[66] तथा यह याज्ञवल्क्य-स्मृति[67], मार्कण्डेय पुराण[68], बौधायन धर्मसूत्र[69] तथा अत्रि संहिता[70] में भी वर्णित है।

55.महाभारत, शान्तिपर्व, 242.15
56.बृहदारण्यक-उपनिषत्, 4.4.22
57.ब्रह्मसूत्र, 3.4.28
58.गीता, 18.5
59.मुण्डक-उपनिषत्, 3.1.9
60.पाणिनि, अष्टाध्यायी, 3.3.90; यास्क, निरुक्त, 3.4.19.
61.ऋग्वेद, 7.32.13
62.कात्यायन श्रौतसूत्र, 1.2.2.
63.छान्दोग्य उपनिषत्, 3.16.1
64.तदेव, 3.17.4— अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति, ता अस्य दक्षिणाः॥
65.शतपथ ब्राह्मण, 12.8.2.4
66.शतपथ ब्रह्मण, 11.5.6.1; तैत्तिरीय आरण्यक, 2.1.1;गौतमधर्मसूत्र, 1.8.17; आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.4.14; मनुस्मृति, 4.21.
67.याज्ञवल्क्य-स्मृति, 1.102
68.मार्कण्डेय पुराण, 25.21
69.बौधायन धर्मसूत्र, 2.6.11.1
70.अत्रि संहिता, 114

देवयज्ञ— जो अग्नि में (पुरोडाश के अभाव में) समिधा को देवता के निमित्त हवन करता है वह देव यज्ञ कहलाता है। यह प्रतिपादित किया गया है यदि पुरोडाश का अभाव हो तो प्रतिदिन एक लकड़ी का टुकड़ा ही प्रज्वलित अग्नि में देवता के निमित्त डाल दें। हो सके तो घी का एक दीप ही प्रतिदिन देवता के लिए जला दें। देवता का श्रद्धापूर्वक नमस्कार, स्तुति, भजन, ध्यान, सेवा, समर्पण आदि भी देवयज्ञ है।

पितृयज्ञ— जो पितरों के लिए (पिण्डादि के अभाव में) जल को स्वधा शब्द उच्चारण करते हुए प्रदान करते है वह पितृयज्ञ कहलाता है।अर्थात् मृत पिता, पितामह और प्रपितामह के लिए प्रतिदिन जो जल के तर्पण करता है, वह पितृयज्ञ कहलाता है। जीवित माता -पिता, पितामह एवं प्रपितामह की सेवा भी पितृयज्ञ है।

भूतयज्ञ— जो प्राणियों के लिए बलि (भोजन), का हरण प्रतिदिन करता है, वह भूतयज्ञ कहलाता है।अर्थात् जो आस-पड़ोस क जीव-जन्तु के लिए प्रतिदिन अन्न या भोजन प्रदान करता है, भूतयज्ञ कहलाता है। यह मनुष्य का परम कर्तव्य है कि आसपास के पशु, जीव एवं जन्तुओं को निष्ठापूर्वक पका हुआ अन्न या अन्न प्रदान करे। यह भूतयज्ञ है।

नृयज्ञ— अतिथि रूप में आये हुए मनुष्य का सत्कार नृयज्ञ कहलाता है।आर्त, बुभुक्षित, रोगग्रस्त मनुष्यों की सेवा मनुष्य यज्ञ है, नृयज्ञ है। यह प्रतिदिन करना चाहिए।

ब्रह्मयज्ञ— प्रतिदिन वेद, उपनिषद्, गीता आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन ब्रह्मयज्ञ कहलाता है। यह यज्ञ जीवनभर करना चाहिए। शतपथ ब्रह्मण में कहा गया है— स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। आजीवन स्वाध्याय यज्ञ कना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है— पाठक जिस यज्ञ का अध्ययन करता है उसका फल पाता है। ऋग्वेद के अध्ययन से वह देवताओं को दूध की आहुतियों से तृप्त करता है। यजुर्वेद के अध्ययन से देवों को घी की आहुतियों से तृप्त करता है। सामवेद के अध्ययन से देवों को सोम की आहुति से तृप्त करता है।[71] इस ब्रह्मयज्ञ की जुहू वाणी है।, मन उपभृत है, चक्षु ध्रुवा है, मेधा स्रुवा है, सत्य अवभृथ स्नान है तथा स्वर्गलोक इसका अन्त है। इस पृथिवी को कितना ही धन से भरकर दक्षिणा देकर जिस लोक को जीते, उतने तिगुणा या उससे भी अधिक अक्षय्य लोक को वह प्राप्त विद्वान् प्राप्त करता है, जो स्वाध्याय करता है। इसलिए प्रतिदन स्वाध्याय करना चाहिए। इसकी महत्ता शतपथ ब्राह्मण[72] तैत्तिरीय आरण्यक तथा तैत्तिरीय उपनिषत् में वर्णित है। मुद्गल ऋषि का मत है कि स्वाध्याय और प्रवचन तप है।

इसके अतिरिक्त गौतम धर्मसूत्र में 21 प्रकार के यज्ञों का वर्णन आया है— सात पाकयज्ञ, सात सोमयज्ञ एवं सात हविर्यज्ञ। प्रायः अधिकांश यज्ञ अब लुप्तप्राय हो गये हैं। परन्तु अभी भी उपर्युक्त पञ्च महायज्ञों का अनुष्ठान प्रतिदिन किया जाता है। मनु का कथन हैकि यहायज्ञ, यज्ञ एवं स्वाध्याय तथा व्रतों के अनुष्ठान से मनुष्य ब्रह्मत्व की योग्यता प्राप्त करता है।[73] शतपथ ब्राह्मण का कहना है कि यज्ञ से ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है।[74] गीता में सभी कर्मों को भगवत्समर्पण की भावना से करने के लिए कहा गया है। चूँकि परमात्मा ही परम देव हैं और सभी प्राणियों के हृदय में अवस्थित है[75] अतः सभी प्राणियों के प्रति देवत्व की भावना से समर्पित कर्म यज्ञ ही है।[76] यह यज्ञ का

71.शतपथ ब्राह्मण, 11.5.6, 4,5,6
72.शतपथ ब्राह्मण, 11.5.6.2 ; तैत्तिरीय आरण्यक एवं तैत्तिरीय उपनिषद्, 1.10.1
73.मनुस्मृति, 2.27. 74.शतपथ ब्राह्मण, 3.2.1.40 75.श्वेताश्वतरोपनिषत्, 6.11

सर्वसुलभउपाय है, जिसे आज भी मनुष्य कर सकते हैं। यज्ञ में भक्तिपूर्वक हवन किया जाता है, मन्त्र का गान किया जाता है। भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग एक प्रकार से यज्ञ ही है। अतएव गीता ने इसे योगयज्ञ[77] कहा है। यह सर्वोपयोगी है और सुलभ है।

स्वाध्याय— स्वाध्याय का वर्णन ब्रह्मयज्ञ के रूप में किया गया है। यह स्वाध्याय यज्ञ उठते, बैठते, चलते और सोते हुए भी किया जा सकता है।[78]

दान— वेद में दान की महत्ता बतलायी गयी है। बृहदारण्यक श्रुति में कहा गया है इन्द्रियों का नियंत्रण (संयम) करो (दम), दान दो एवं प्राणियों पर दया करो।[79] तैत्तिरीय उपनिषत् में कहा गया है कि श्रद्धापूर्वक, सामर्थ्यानुकूल, लज्जापूर्वक, भयपूर्वक तथा ज्ञानपूर्वक दान करना चाहिए।[80] अश्रद्धापूर्वक दान नहीं करना चाहिए। दान करने वाले अमृतत्व को प्राप्त करता है।[81] जो दान नहीं करता है, वह पाप को खाता है।[82] दान करने वाला स्वर्ग को जाता है।[83] दान करने से चित्त शुद्ध होता है।[84] आचार्य शंकर कहते हैं— **देयं दीनजनाय च वित्तम्।** गरीबों को धन दो। दान दो प्रकार के होते हैं— अन्तर्वेदी तथा बहिर्वेदी। अन्तर्वेदी दान यज्ञ में ऋत्विजों, पुरोहितों, उद्गाता, ब्रह्मा दिया को दिया जाता है। बहिर्वेदी दान वह है जो गुरुओं के लिए (विद्याप्राप्त्यर्थ), विवाह के लिए, रोगी की औषधि के लिए, जीविकाहीन के लिए, यज्ञ करने के लिए, अध्ययन करनेवालों के लिए, पथिक के लिए, तथा विश्वजित् यज्ञ करने वाले के लिए माँगने पर दिया जाता है।[85] मनुस्मृति में कलियुग में दान को ही प्रमुख धर्म बतलाया गया है— दानमेकं कलौ युगे।[86] मनु का मत है कि सभ ी दानों में ब्रह्म का दान (वेद पढ़ाना) श्रेष्ठ फल देने वाला है।[87] तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि दान से शत्रु भी मित्र हो जाता है तथा दान में सब कुछ प्रतिष्ठित है।[88] संक्षेप में दान देनेवाला देवता है।[89]जो दान नहीं देता वह असुर है।[90] गीता कहती है कि देश, काल और पात्र का विचार कर प्रत्युपकार की अनपेक्षा सेकर्तव्य भाव से सदैव दान करना चाहिए।[91] यज्ञ, अध्ययन और दान गृहस्थाश्रम का प्रधान धर्म है।

तप— व्याकरण की दृष्टि से तप के दो अर्थ हैं। सन्तप (कष्ट) और पर्यालोचन। शास्त्रोक्त नियमों के पालन में कष्ट होता है अतः शास्त्रोक्त नियमों का अनुपालन तप है। आपस्तम्ब— नियमो वै तपः। जब श्रुति कहती हैकि तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो वै ब्रह्म। यहाँ तप का अर्थ पर्यालोचनहोता है। पर्यालोचन का अर्थ है कि इन्द्रिय एवं मन को एकाग्रकर चिन्तन करना। वेद में तप भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं।

(क) उपवास ही श्रेष्ठ तप है।[92]

(ख) ऋत, सत्य, श्रुत (वेदशास्त्र का श्रवण), शान्त,

76.गीता , 18.46
77.गीता, 4.28
78.शतपथ ब्राह्मण, 11.5.7.4, तैत्तिरीय आरण्यक
79.बृहदारण्यक— उपनिषत्, 5.2.3
80.तैत्तिरीय उपनिषत्, 1.11.2
81.ऋग्वेद, 1.125.6
82.ऋग्वेद, 10.117.6
83.ऋग्वेद, 1.125.5
84.गीता, 18.5
85.गौतम धर्मसूत्र, 1.5.19; बौधायन धर्मसूत्र, 2.3.6
86.मनुस्मृति, 1.86
87.मनुस्मृति, 4.233
88.तैत्तिरीय आरण्य, 10.63
89.यास्क, निरुक्त, 7.15
90.छान्दोग्य उपनिषत्, 8.8.5
91.गीता, 17.20
92.तैत्तिरीय आरण्यक, 10.62.2

शम, दम, दान, यज्ञ एवं ब्रह्म की उपासना तप है।[93]

(ग) आश्रमोचित विहित कर्तव्यों का अनुपालन तप है।[94]

(घ) स्वाध्याय और प्रवचन तप है। यह नाक ऋषि का मन्तव्य है।[95]

(ङ) तैत्तिरीय आरण्यक (2.11) तैत्तिरीय ब्रह्मण (2.12), शतपथ ब्राह्मण (11.5.3) में वेद स्वाध्याय उठते, बैठते, चलते, सोते हुए किसी भी तरह करने पर तप ही कहा गया है। **तत्र श्रूयते स यदि तिष्ठन्नासीनो शयानो वा स्वाध्यायमधीते तप एवं तत्तप्यते तपो हि स्वाध्याय इति।**[96]

(च) अहिंसा सत्य भाषण, अस्तेय (चोरी नहीं करना), तीनों सवन काल में स्नान, गुरु की सेवा, ब्रह्मचर्य का पालन, भूमि पर शयन और उपवास को तप कहा गया है।[97]

(छ) गीता में तीन तरह के तप बतलाये गये हैं— कायिक, वाचिक एवं मानसिक।

(अ) देवता, द्विज, गुरु एवं प्राज्ञ का पूजन, पवित्रता, ऋजुता, ब्रह्मचर्य, और अहिंसा— कायिक तप हैं।[98]

(आ) सत्य, हितकारक, प्रिय, एवं अनुद्विग्न करणीय वाणी स्वाध्याय का अभ्यास, वाचिक तप है।[99]

(इ) मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, आत्मनिग्रह और भाव की शुद्धि मानसिक तप है।[100]

(ज) महाभारत के शान्तिपर्व में इन्द्रियों एवं मन के संयम तथा एकाग्रता को परम तप कहा गया है।[101]

(झ) महाभारत वन पर्व में अपने धर्म का सम्यक् अनुपालन को तप कहा गया है।[102] मनुस्मृति में भी वर्णानुसार कर्तव्यों का अनुपालन तप कहा गया है।[103]

(ञ) वेद भाष्यकार सायण ने कहा है कि आश्रम धर्म का अनुपालन तप है। ब्रह्मचर्याश्रम आश्रम में स्वाध्याय तप है, गृहस्थाश्रम में दान तप है, वानप्रस्थाश्रम में उपवास तप है तथा संन्यास आश्रम में इन्द्रियों एवं मन की एकाग्रता तप है।[104]

(ट) तप स्वेच्छापूर्वक भोग का त्याग है— तपः भोगत्यागः।

(ठ) मनुस्मृति में श्रुतिविहित आचार का अनुपालन तप कहा गया है।[105]

सारांशतः तप में शास्त्रानुकूल नियमों का पालन, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, दया, गुरुसेवा, आदि व्रतों का पालन, शीत, ऊष्ण आदि का सहन (तितिक्षा) किया जाता है।

वैदिक ऋषियों का जीवन तपोमय था।[106] वैदिक धर्म में यज्ञ एवं तप का सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। गृहस्थाश्रम में यज्ञ प्रधान है और तप गौण। परन्तु ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यास आश्रम में तप प्रधान है, यज्ञ गौण।

छान्दोग्य उपनिषद् का उपर्युक्त मन्त्र (2.23.1) पूरे वेदान्तिक धर्म का मूल मन्त्र है, जिसमें पूरा धर्म समाहित है— सामान्य धर्म (ब्रह्मचर्य एवं तप), विशेष

93.तैत्तिरीय आरण्यक, 10.8.1
94.तैत्तिरीय उपनिषत्, 5.3
95.तैत्तिरीय, 1.9, मनुस्मृति, 2.166
96.आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.4.1
97.बौधायन धर्मसूत्र, 3.10.14; गौतम धर्मसूत्र, 3.10.15
98.गीता,17.14
99.गीता, 17.15
100.गीता, 17.16)
101महाभारत, शान्तिपर्व, 323.7, 250.4
102.महाभारत, 313.88
103.मनुस्मृति 11.235
104.तैत्तिरीय आरण्यक, 9.2.1 के सायण भाष्य से उद्धृत
105.मनुस्मृति, 1.110
106.ऋग्वेद, 10.109.4, यजुर्वेद, 15.49

धर्म (यज्ञ, अध्ययन, दान) और परम धर्म (ब्रह्मस्थ होना)। इसी मन्त्र में कहा गया है— **ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति।**अर्थात् ब्रह्मस्थ होने पर अमृतत्व की प्राप्ति होती है। यही गीता का सार है। जब गीता कहती है कि योगस्थ होकर कर्म करो (गीता, 2.48) तो इसका तात्पर्य ब्रह्मस्थ होना ही है। योगस्थ के अंतर्गत ही कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग आता है। ब्रह्मस्थ होने की पूर्वपीठिका है— ब्रह्मचर्य, तप, यज्ञ, अध्ययन, दान, कर्म, भक्ति एवं ज्ञान। गीता कहती है जब पुण्यार्जन से पाप का क्षय होता है, तब साधक का मन भगवान् की भक्ति में लगता है।[107]ब्रह्मचर्य, तप, यज्ञ, अध्ययन, एवं दान पुण्य है एवं चित्त शुद्धि के साधन हैं।[108] पुण्यानुष्ठान से ज्यों-ज्यों चित्त शुद्ध होता जाता है, मन ब्रह्मस्थ होने लगता है और अन्ततः ब्रह्मज्योति प्रकट हो जाती है— यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा।[109]

छान्दोग्य ब्राह्मण, आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं गौतमसूत्र के आलोक में ब्रह्मचर्य में ही सत्य, अहिंसा, अस्तेय, मैथुन का त्याग, अपरिग्रह, शम, दम, आदि संनिह्त बतलाया गया है। अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला सत्य, अहिंसा... आदि व्रतों का पालन स्वाभाविक रूप से करता है। अतः शास्त्रों में कतिपय स्थानों पर सत्यादि व्रतों का अनुपालन न लिखकर केवल ब्रह्मचर्य के अनुपालन का उपदेश दिया गया है। यथा छान्दोग्य उपनिषत्, 8.4.3. अन्यत्र तप के अन्तर्गत सत्य, हिंसा, दान दया, शम, दम, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय आदि व्रतों को संनिहित बताया गया है। यथा— तैत्तिरीय आरण्यक 10.8.1, गीता, 17.14-16, महाभारत शान्तिपर्व, 79.18

यही कारण है कि धर्म के लक्षण या धर्म के साधन वर्णन करने में मनु एवं याज्ञवल्क्य ने इन्हें अलग अलग उल्लेख किया है। पाठक को इससे भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥110

धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धीः, विद्या, सत्य, और अक्रोध ये सब धर्म के लक्षण हैं तथा ब्रह्मचर्य व्रत के अन्तर्गत हैं।

अहिंसासत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्।[111]

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, दान, दम, दया, क्षान्ति, ये सभी धर्म के साधन हैं। ये भी ब्रह्मचर्य व्रत के अन्तर्गत हैं।

वेद के ऋषियों का ध्यान केवल व्यष्टि केअभ्युदय और निःश्रेयस पर टिका नहीं था, प्रत्युत पूरे समष्टि के अभ्युदय तथा निःश्रेयस् लक्ष्य था। तब तो वैदिक ऋषि कहते हैं—**वसुधैव कुटुम्बकम्।**[112] तथा **यत्र विश्वं भवति एकनीडम्।**[113] विश्व में लोग कैसे सुखी हों, वे कैसे अमृतत्व की प्राप्ति करें? यह उनके लिए जिज्ञासा का विषय था। उनकी खोज थी कि मनुष्य असत्, अन्धकार और दुःख से ग्रस्त है और उसे सत्, ज्योति और अमृत चाहिए। वह प्रार्थना करता है— असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय। हे प्रभो, मुझे असत् से सत् की ओर, तमस् से ज्योति की ओर और मृत्यु से अमृतत्त्व की ओर ले चलो।[114] अतः विश्वबन्धुत्व की भावना से प्रेरित होकर प्रत्येक प्राणी के हित की अपेक्षा से वर्णाश्रम

107.गीता, 7.28
108.गीता, 18.5
109.मुण्डक उपनिषत्, 3.1.9
110.मनुस्मृति, 6.92
111.याज्ञवल्क्य, 1.122
112.महोपनिषद्, 6.72.
113.यजुर्वेद, 32.8
114.बृहदारण्यक उपनिषत्, 1.3.28

व्यवस्था स्थापित की गयी और चतुर्वर्ग का लक्ष्य निर्धारित किया गया। यह आश्रम व्यवस्था मानव धर्म का आधारस्तम्भ है इसे समझना आवश्यक है।[115] इसके द्वारा ही मनुष्य चतुर्वर्ग– धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति करता है।

वाल्मीकि-रामायण में कहा गया है–

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्।[116]

धर्म से अर्थ की प्राप्ति होती है, धर्म से सुख की प्राप्ति होती है, धर्म से ही मनुष्य सबकुछ पा लेता है। इस संसार में धर्म ही सार है।

महाभारत शान्तिपर्व में भगवान् व्यास का मन्तव्य भी इसी प्रकार का है, जिसे अविकल रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है-

सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः।
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः॥[117]

सत्पुरुषों में सदा सत्य रूप धर्म का पालन हुआ है। सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य को ही सदा सिर झुकाना चाहिए, क्योंकि सत्य ही जीव की परम गति है॥ इससे स्पष्ट होता है कि सत्य गन्तव्य है और मार्ग भी है।

सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम्।
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥118

सत्य ही धर्म, तप और योग है, सत्य ही सनातन ब्रह्म है, सत्य को ही परम यज्ञ कहा गया है तथा सबकुछ सत्य पर ही टिका हुआ है।

आचारानिह सत्यस्य यथावदनुपूर्वशः।
लक्षणं च प्रवक्ष्यांमि सत्यस्येह यथाक्रमम्॥[119]

अब मैं क्रमशः सत्य के आचार और लक्षण ठीक ठीक बतलाऊँगा।

प्राप्यते च यथा सत्यं तच्च श्रोतुमिहार्हसि।
सत्यं त्रयोदशविधं सर्वलोकेषु भारत॥[120]

सत्यकी प्राप्ति जिस तरह से होती है, वह सुनना चाहते हो। हे भारत, सम्पूर्ण लोकों में सत्य के तेरह स्वरूप गिनाये गये हैं।

सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः।
अमात्सर्यं क्षमा चैव ह्रीस्तितिक्षानसूयता॥
त्यागो ध्यनमथार्यत्वं धृतिश्च सततं स्थिरा।
अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारास्त्रयोदश॥[121]

हे राजेन्द्र, सत्य, समता, दम, मत्सरता, का अभाव, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, अनसूया, त्याग, ध्यान श्रेष्ठ आचरण , निरन्तर स्थिर रहने वाला धैर्य तथा अहिंसा– ये तेरह सत्य के ही स्वरूप हैं। इनमें संशय नहीं।

सत्यं नामाव्ययं नित्यमविकारी तथैव च।
सर्वं धर्माविरुद्धेन योगेनैतदवाप्यते॥[122]

नित्य एक रस, अविनाशी और अविकारी होना ही सत्य के लक्षण हैं। समस्त धर्मों के अनुकूल कर्तव्य पालन रूप योग के द्वारा इस सत्य की प्राप्ति होती है।

उपर्युक्त वर्णनों से उपनिषत् प्रतिपादित धर्म की पुष्टि होती है। इसीलिए इसका उद्धरण दिया गया है। इसी पर्व के 190वें अध्याय में पुनःस्पष्ट किया गया है –

तत्र यत् सत्यं स धर्मो यो धर्मः स प्रकाशो यः प्रकाशस्तत् सुखमिति। तत्र यदनृतं सोऽधर्मो योऽधर्मस्तद् तमो यति तमस्तद् दुःखमिति।[123]

वहाँ जो सत्य है, वही धर्म है, जो धर्म है वहीं

115.मैत्रायणी उपनिषत्, 4.3.
116.वाल्मीकि-रामायण, अरण्यकाण्ड, 9.30
117.महाभारत शान्तिपर्व, 162.4– सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः।
118.तदेव, श्लोक 5
119.तदेव,. श्लोक 6
120.तदेव, श्लोक 7
121. तदेव, श्लोक 8-9
122.तदेव, श्लोक 10
123.महाभारत , शान्तिपर्व, 190.5

प्रकाश है और जो प्रकाश है, वही सुख है। इसी प्रकार वहाँ जो अनृत है अर्थात् असत्य है, वही अधर्म है और जो अधर्म है, वही अन्धकार है, और जो अन्धकार है, वही दुःख है।

जिस प्रकार अधिनियम (Act) के क्रियान्वयन के लिए नियम (Rule) बनाये जाते हैं, अगर कोई नियम अधिनियम के प्रतिकूल होता है तो वह न्यायालय के द्वारा अमान्य कर दिया जाता है, उसी प्रकार श्रुति के परिप्रेक्ष्य में स्मृति द्वारा नियम बनाये गये ताकि श्रुति के मूल भावों को सही सही क्रियान्वयन हो सके। अगर स्मृति के नियम श्रुति के प्रतिकूल हो तो वह नियम मान्य नहीं है। धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों को जीवन के प्रथम चरण में अवगत कराने के उद्देश्य से ब्रह्मचर्याश्रम, उसके सम्यक् क्रियान्वयन हेतु गृहस्थाश्रम तथा मोक्ष (निःश्रेयस्) की सिद्धि हेतु वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यास आश्रम की स्थापना धर्मसूत्रों में की गयी, जिसे बाद में स्मृतियों में उसे पल्लवित पुष्पित किया गया।

संक्षेप में यही वेदान्त धर्म है, इसे ही विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म कहा है।

***

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का अगला माघ मास का अंक इस बार **विद्या की देवी सरस्वती** को समर्पित प्रस्तावित है। वेद में सरस्वती का उल्लेख नदी के रूप में तथा देवता का रूप में आया है, जिसे स्पष्ट करते हुए निरुक्तकार यास्क ने स्पष्ट रूप से इसे प्रतिपादित किया है। यजुर्वेद में सरस्वती को वाक्, वाग्देवता आदि नाम दिया गया है— वाग् वै सरस्वती। पुराण-साहित्य में भी ब्रह्मा की शक्ति के रूप में सरस्वती का विस्तृत वर्णन आया है। आगमों की परम्परा में भी इनका विशिष्ट स्थान है। वेदोक्त होने के कारण स्पष्ट है कि वेद से ही विद्या की अधिष्ठात्री देवी के रूप में बोद्धौं और जैनियों ने इन्हें ग्रहण किया है।

किन्तु खेद का विषय है कि 19वीं शती में इतिहासकारों ने प्रचारित किया कि वेदों में सरस्वती नदी के रूप में है। पौराणिक प्रसंगों को तोड़-मरोड़कर अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ फैलायी गयी हैं। ब्रह्मा के साथ उनके संबन्ध के लेकर अश्लील विमर्श किये गये हैं, जिनका अंधानुकरण कर आज भी सनातन धर्म को दूषित करने का प्रयास किया जा रहा है। अतः आवश्यकता है कि विद्वज्जन प्रमाणों के साथ आगे आकर तथ्यपूर्ण विमर्श के द्वारा फैल रही भ्रान्तियों को दूर करें।

इसी आशय से सरस्वती-विमर्श पर विद्वत्तापूर्ण आलेख आमन्त्रित हैं।

***

'आनन्द-रामायण' में उद्धृत रामसेतु विवेचन की प्रासंगिकता

डॉ. तेज प्रकाश पूर्णानन्द व्यास

बी 12, विस्तारा टाउनशिप, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452010

सनातन धर्म के कथाकारों की यह विशेषता है कि वे अपने काल के अनुरूप लोगों को समझाने के लिए प्राचीन कथाओं को नये रूप में गढ़ते हैं। जिस प्रसंग में काएँ गढ़ी जाती हैं, उन प्रसंगों को महत्त्व देकर अन्य प्राचीन कथाओं में इतना परिवर्तन परिवर्द्धन कर देते हैं कि वह सर्वथा नवीन कथा बन जाती है। हमारे प्राचीन सन्त ने इस प्रकार की जो कथाएँ गढ़ते रहे हैं, उन्नके पीछे लोगों में धर्म के प्रति झुकाव उत्पन्न करना मुख्य उद्देश्य रहा है। ऐसी कुछ कथाएँ परवर्ती काल की आनन्द-रामायण में गढ़ी गयी है, जिसमें महाभारत युद्ध में हनुमानजी की उपस्थिति का एक कारण बतलाया गया है। महाभारत में ऐसी कोई कथा नहीं है। वहाँ भीम के साथ वार्तालाप का प्राचीन प्रसंग है। किन्तु इस कथा में अर्जुन के साथ संवाद दिया गया है। ऐसी कथाओं की व्याख्या करते समय इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

बाल्यकाल में मुझे छोटी काशी पीपलरवा, जिला देवास में सुन्दरकाण्ड, रामायण आदि ग्रन्थ पढ़ने और रामलीला देखने का सुअवसर मिला। वहाँ मैंने वेदज्ञ गोलोकवासी पंडित श्यामलाल व्यासजी से यह सुना था कि राम की कथा प्रसंग के समय हनुमानजी सदैव ही उपस्थित रहते हैं।

चाहे त्रेतायुग रहा हो, या द्वापर युग, या कलियुग हो, आज भी भगवान् श्रीराम के चरित का जहाँ वर्णन होता है, वहाँ पवनपुत्र हनुमानजी अवश्य ही उपस्थित होते हैं। वाल्मीकि रामायण के उत्तर-काण्ड में सुस्पष्ट वर्णित है : —

यावद्रामकथा लोके विचरिष्यति भूतले।
तावच्छरीरे वत्स्यंतु प्राणा मम न संशयः॥
यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्॥[1]

अर्थात् अंजनीसुत हनुमान ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम से कहा— हे राम ! इस वसुन्धरा पर जब तक श्री रामकथा प्रचलित रहेगी, तब तक सुनिश्चित रूप से मेरे प्राण इस शरीर में बसे रहेंगे। हे भगवन् ! संसार में जब तक आपकी पावन कथा पाठ का प्रचार होता रहेगा, तब तक आपके आदेश का पालन करते हुए मैं इस पृथ्वी पर रहूँगा। वस्तुतः यह विवेचन प्रासंगिक भी है; क्योंकि अष्ट चिरंजीवियों में हनुमानजी भी हैं। कहा भी गया है—

1 श्रीवाल्मीकिरामायणम्, (उत्तरकाण्डं, 40.17,108.35)

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युर्विवर्जितः॥[2]

अर्थात् अश्वत्थामा, बलि, वेदव्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम ये सात चिरंजीवी हैं। इन सातों के साथ ही मार्कण्डेय ऋषि को भी चिरञ्जीवी कहा गया है। ऐसा कहा जाता है कि इन अष्ट चिरञ्जीवीयों के प्रातः नाम स्मरण तथा जाप करने से व्यक्ति सर्व व्याधियों से मुक्त और चिर स्वस्थजीवन प्राप्त कर शतायु प्राप्त करता है।

राम-सेतु प्रसंग

गूढरहस्य का उद्घाटन करने वाले द्वापर युग के सुदर्शनचक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण, पवनपुत्र हनुमान तथा गाण्डीवधारी अर्जुन की कथा आनन्द रामायण के मनोहरकाण्ड के 18वें सर्ग में वर्णित है। सुदर्शनचक्रधारी श्रीकृष्ण की यह रोचक कथा द्वापर युग के समापन अवधि की है। कहा जाता है कि एक दिन पृथा पुत्र अर्जुन श्रीकृष्णजी को छोड़कर अकेले ही आखेट के लिए वन में दक्षिण दिशा की ओर चले गए। अर्जुन स्वयं सारथी थे और वन में आखेट उपरान्त स्नान की तैयारी करने लगे। उसने सेतुबन्ध रामेश्वर के धनुष्कोटि तीर्थ पर स्नान किया। और दर्प के साथ समुद्र तट पर घूमने लगे। तभी अर्जुन ने पर्वत श्रृंखला पर सामान्य वानर का रूप धारण किए हुए (हनुमानजी) को राम राम नाम जाप करते हुए देखा। वहाँ हनुमानजी के शरीर पर पीत वर्ण के रोम सुशोभित हो रहे थे। अर्जुन ने वानर (हनुमान जी) से पूछा— "वानर तुम कौन हो?" तुम्हारा नाम क्या है? वानर (हनुमानजी)ने उत्तर दिया कि मैं वही वायुपुत्र हनुमान हूँ, जिसके प्रताप से मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने समुद्र पर सौ योजन का विस्तृत सेतु बनाया था।

पवनपुत्र हनुमानजी की गर्वोक्ति सुनकर गाण्डीवधारी अर्जुन ने अभिमानपूर्वक हँसकर प्रत्युत्तर दिया कि श्रीराम ने इतना कष्ट व्यर्थ में क्यों उठाया था? श्रीरामजी अप्रतिम, अद्भुत, अद्वितीय तथा कुशल धनुर्धर थे, उन्होंने स्वयं अपना सेतु बाणों से क्यों नहीं तैयार किया?

अर्जुन के तर्क को सुनकर पवनपुत्र हनुमान ने कहा कि बाणों से निर्मित सेतु सशक्त एवं भारयुक्त जामवंत नल नील आदि वानरों के भार को वहन नहीं कर पाता। इसी को दृष्टिगत रखते हुए श्री राम ने बाणों का पुल निर्मित नहीं किया। तभी अर्जुन ने हनुमानजी से कहा कि हे वानर श्रेष्ठ! यदि श्रीरामचंद्रजी को बाण के सेतु को वानरों के भार से डूब जाने का भय था तो फिर उन श्रीरामजी की धनुर्विद्या की क्या विशेषता रही? वे बाणों के सेतु बनाकर अपनी सेना सहित समुद्र पार करते तो ही उनकी धनुर्विद्या की विशेषज्ञता पूर्ण होती।

गाण्डीवधारी अर्जुन को अपनी धनुर्विद्या का बड़ा अभिमान था। अर्जुन ने कहा मैं अपने गाण्डीव धनुष के तीरों से समुद्र पर पुल बनाता हूँ। तुम इस पुल पर आनन्द से खूब नाचो कूदो मौज मनाओ और स्वयं परीक्षण करो कि मैंने कितना मज़बूत पुल निर्मित किया है। मेरी अप्रतिम अद्भुत और अद्वितीय धनुर्विद्या देख आप हतप्रभ रह जाओगे। मेरी धनुर्विद्या ही है, रोमांच एवं विस्मयकारी। अंजनीसुत हनुमान ने उत्तर दिया कि आपके बनाए हुए पुल को मैं मात्र अंगूठे के दबाने मात्र से डूबा दूँ तो आप क्या करेंगे? अर्जुन ने तुरंत उत्तर दिया कि मेरे बनाए हुए पुल को यदि आप डुबा दोगे तो मैं चिता में जलकर स्वयं को भस्मीभूत कर लूँगा। यह उत्तर देकर अर्जुन ने हनुमानजी को कहा कि यदि आप

2 (आचारेन्दु,पृ.22)

हार गए तो क्या करेंगे? हनुमानजी ने कहा कि यदि मैं आपके बनाए हुए पुल को अंगूठे के भार मात्र से डूबा नहीं पाया तो तो आपके रथ की ध्वजा पर विराजमान होकर आपकी सहायता हेतु पूर्ण रूप से सदा सदा के लिए वास करूँगा, यह रामभक्त हनुमानजी का सत्य वचन है। अच्छा, अति सुंदर, अति शोभनम,कहते हुए अर्जुन ने गाण्डीव को टंकारित किया और बाणों को संधान कर एवं उनकी अप्रतिम वर्षा कर अल्प समय मात्र में पुल का निर्माण कर दिया।

यह सेतु का विस्तार 100 योजन का था जो कि समुद्र के एक छोर से दूसरे छोर तक था। सेतु को पवनपुत्र हनुमान ने अपने अंगूठे के भार मात्र से डुबो दिया।

तब श्रीराम भक्त हनुमान की अपरिमित अद्वितीय शक्ति से प्रसन्न होकर देवताओं एवं गंधर्वों ने हनुमानजी पर पुष्प वर्षा की। अब हनुमानजी प्रसन्न हुए और अर्जुन दुःखी। वह चिता तैयार कर स्वयं उसमें जलकर भस्मीभूत होने को उद्यत हुआ। तभी ब्रह्मचारी वटुकरूप धारण करके भगवान् द्वारिकाधीश श्रीकृष्णजी पधारे तथा अर्जुन से बोले —

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तं प्राह वटुरूपधृक्।
ज्ञात्वार्जुनमुखात्सर्वं पूर्ववृत्तं पणादिकम्॥
उभाभ्यां यद्यच्चरितं तच्च वृथा गतम्।
साक्षित्वेन बिना कर्म सत्यं मिथ्या न बुध्यते॥[3]

अर्थात् हे भाई तुम इस चिता में क्यों कूदने जा रहे हो? अर्जुन ने श्रीकृष्ण को पूर्व में हनुमानजी से हुई वार्ता का पूर्ण वृतान्त सुना दिया। तब उन ब्रह्मचारी ने कहा कि दोनों की बातों में हुई सम्पूर्ण वृतांत का कोई भी साक्ष्य या गवाह नहीं है तो तुम्हारा सम्पूर्ण वृतान्त तथ्य साक्ष्य रहित है। किसी भी प्रकरण की निर्णीत साक्ष्य आधारित ही होती है। ब्रह्मचारी ने कहा कि अब मैं दोनों के मध्य साक्षी हूँ। आप दोनों पूर्ववत् ही उसी प्रकार वार्ता करें और आपके तदनुरूप क्रियान्वयन को अवलोकित कर ही जय पराजय का निर्णय दे सकता हूँ। ब्रह्मचारी के साक्षीरूप में उपस्थिति में वार्ता के अनुरूप गाण्डीवधारी अर्जुन ने पुनः पूर्ववत् सेतु की रचना कर दी। इस सेतु के नीचे सुदर्शनचक्रधारी श्रीकृष्ण ने अपना अप्रतिम शक्तियुक्त सुदर्शन चक्र सुस्थापित कर दिया। सेतु के निर्माणोपरान्त पवनपुत्र हनुमानजी अपने अंगूठे के भार से सेतु को दबाने लगे। तब उन्हें सेतु अत्यधिक सशक्त जान पड़ा। उन्होंने पैरों, घुटनों और हाथों के बल से सेतु को दबाया, किंतु इस बार वह सेतु जौ के दाने के बराबर भी नहीं डूबा। यह सब बालरूप बटुधारी कृष्ण भगवान् की ही लीला थी, अन्यथा हनुमानजी के बल का सामना कौन कर सकता है? उन्हें तो अतुलित बलवाला कहा गया है, हिमालय के समान भार वाला कहा है। ज्ञानियों में वे अग्रगण्य हैं, उन्हें सकलगुणों की खान कहा है। वे विद्यावान, गुणी, और चतुर भी हैं। अतः तुलसीदासजी ने सुन्दरकाण्ड में कहा भी है —

अतुलितबलधामं - स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥

तब शान्तचित्त से पवनपुत्र हनुमानजी ने अपनी प्रज्ञा से स्वयं विमर्श किया और त्वरित ही सुनिर्णय कर लिया कि कुछ समय पूर्व जिस सेतु को मैंने मात्र अंगूठे के बल से सहज ही डुबो दिया था, अब वही सेतु अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देने के उपरान्त भी तनिक भी नहीं डिग रहा। यह मात्र परब्रह्म कृष्ण की अद्वितीय शक्ति

3. श्रीआनन्दरामायण, मनोहर काण्ड सर्ग 18.26—27

का ही परिणाम ही है। हो न हो ये साक्षात् सुदर्शनचक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। तब मन ही मन हनुमानजी प्रार्थना करने लगे— हे नाथ! हे वासुदेव! मेरे गर्व के मर्दन के लिए ही आपने ऐसा किया है। निश्चय ही यह आपकी लीला है। आपके सम्मुख कौन ठहर सकता है? इस प्रकार प्रार्थना कर हनुमानजी ने सब जान लिया और अर्जुन से कहा कि यही बटुक ब्रह्मचारी सुदर्शन चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण हैं। यही द्वारिकाधीश बांके बिहारी हैं। जिन्होंने अपना सुदर्शन चक्र सेतु के नीचे लगा दिया है। मुझे सब विदित हो गया है। हे पृथा पुत्र अर्जुन! ये श्रीकृष्ण ही आपकी मदद कर आपको विजयश्री दिलाने आए हैं।

'आनन्द-रामायण' का श्लोक इस बात की पुष्टि करता है —

सहाय्यार्थं स्वयं यातः सत्यं ज्ञातं मयार्जुनः।
अनेन रामरूपेण त्रेतायामवरोपितः॥[4]

यही रूप धारण करके त्रेता युग में मुझे वरदान दिया था कि द्वापर के समापन अवसर पर मैं तुम्हें कृष्ण रूप में दर्शन दूँगा। तुम्हारे सेतु के बहाने इन्होंने अपना वरदान भी पूरा कर दिया। अञ्जनीसुत हनुमानजी पृथापुत्र अर्जुन से अभिव्यक्त कर ही रहे थे कि इतने में ही बटुक ब्रह्मचारी ने अपना बटुक रूप त्याग कर श्रीकृष्णरूप धारण कर लिया। उस समय वे पीत वस्त्र धारण किये हुए थे। उनका श्यामल शरीर नव नीरद के समान सुशोभित हो रहा था। उन महात्मन् योगी सुदर्शन चक्रधारी श्रीकृष्ण के दर्शन करते हुए श्री हनुमान के रोम-रोम रोमांचित हो उठे और हनुमानजी ने भगवान् श्रीकृष्ण को साष्टांग प्रणाम किया। श्रीकृष्णजी ने हनुमान को उठाकर अपने अंक में भर लिया। अपनी पुरानी अभीप्सा को साक्षात् पूर्ण होते देख हनुमानजी अति प्रसन्न हुए और वे स्वयं को कृतकृत्य मान धन्यता को प्राप्त हुए। श्रीकृष्णजी की आज्ञानुसार सुदर्शन चक्र सेतु से निकलकर अपने स्थान पर चला गया। अर्जुन द्वारा निर्मित सेतु समुद्र की तरंगों में कागज़ की नांव की तरह सहज में ही डूब कर विलुप्त हो गया।

तदर्जुनो गर्वहीनो मेने कृष्णेन जीवितः।
कृष्णस्तदार्जुनं प्राह त्वया रामेण स्पर्धितम्॥[5]

इस प्रकार अर्जुन का समूल गर्व नष्ट हो गया और उन्होंने समझ लिया कि श्रीकृष्ण ने ही मुझ अर्जुन को जीवित रख लिया, यह उनकी अनन्त कृपा और आशीर्वाद था; अन्यथा आज मैं अग्नि में जलकर नष्ट हो जाता। कुछ देर बाद देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा— "हे धनञ्जय! तुमने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम से स्पर्धा की थी। तुमने धनुर्विद्या में त्रिलोकीनाथ श्रीरामचन्द्रजी से भी स्वयं को श्रेयस्कर मान लिया। इसीलिए हे धनुर्धर! हनुमानजी ने तुम्हारी धनुर्विद्या के प्रभुत्व शक्ति को निरापद या शून्य कर दिया।" इस प्रकार कहते हुए भगवान् वासुदेवजी ने आञ्जनेय से भी इस प्रकार कहा— "हे पवनपुत्र हनुमान! तुझमें भी बल का मिथ्या अभिमान हो गया था, अतः तुम मेरे सुदर्शन चक्र के बल द्वारा अर्जुन से परास्त हुए। तुम्हारा गर्व भी नष्ट हो गया। जहाँ बल, धन, ऐश्वर्य हो,वहाँ अभिमान हो जाता है। तुम विकार से रहित हो गये हो। अब आनन्दपूर्वक मेरा भजन करो।" तब अर्जुन ने हनुमानजी से अपने रथ की ध्वजा में विराजमान होने के लिए प्रार्थना की और श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर चले गये। तब से लेकर हनुमानजी स्वयं द्वारा दिये गये वचन के अनुसार अर्जुन के रथ की ध्वजा पर विराजित दिखाई देते हैं। यह प्रतीक है हनुमान अर्जुन की गर्वोक्ति का। दम्भ में दर्प कदापि उचित नहीं। दर्प तो पतन का

4 श्रीमदानन्दरामायण मनोहरकाण्ड, सर्ग 18. 37

5 आनन्दरामायणम्, मनोहरकाण्डं, सर्ग 18.42

6. भर्तृहरि, नीतिशतकम्, श्लोक संख्या 8

मार्ग है। जब व्यक्ति का पतन हो जाता है, तब वह सोचता है –

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मित्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चिज्ज्ञातं बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥[6]

जब मैं बहुत कम जानता था, तब मैं हाथी की तरह मदमस्त हो गया था; मैं सर्वज्ञ हूँ ऐसा मेरे मन को गर्व हो गया था। पर जब शयाने लोगों के पास से थोडा कुछ जानने लगा, तब 'मैं मूर्ख हूँ' ऐसा ध्यान में आते ही बुखार जैसा मेरा मद भी चला गया।

किसी भी विषय की अति और गर्व ये दो बिन्दु जीवन में पतन का कारण बनते हैं– अतः ठीक ही कहा गया है– **अति सर्वत्र वर्जयेत्।**

आनंद रामायण के मनोहर काण्ड के सर्ग 18वें सर्ग में वर्णित प्रसंग में अप्रतिम धनुर्धारी अर्जुन और अतुलित बलधाम हनुमानजी के दर्प को निरापद किये जाने के प्रसंग से मानव को जीवन में यह सीख लेकर हृदयंगम करनी चाहिये कि अपनी शक्ति और बुद्धि के चरमोत्कर्ष पर पहुँचने वाले अर्जुन और हनुमान के दर्प को भी पलभर में भगवान् श्रीकृष्ण ने चूर चूर कर दिया था तो सामान्य जन की तो बात ही क्या है? मानव अपने जीवन में अद्भुत प्रतिभा को निखारे, पुरुषार्थता अपनावे एवं भगवान श्रीकृष्ण के शुभाशीर्वाद को मानकर दूर्वा की तरह विनम्रता तथा कृतज्ञतायुक्तयुक्त बनें। उच्च उदात्त मानवीय गुणों का धारक बनने के उत्कृष्टतम पाठ को ग्राह्य कर उत्कृष्टतायुक्त जीवन बनावे। साम्यता एवं स्थितप्रज्ञमय होकर जीवनशैली को दैनंदिनी का अविभाज्य अंग बनावे।

गर्व तो पतन का कारण बनता है। मानव जन्मजात उच्च गुणों का वाहक है। उन्हें नैसर्गिक सकारात्मक जीवनशैली के साथ बढ़ाना ही उचित है। दया, करुणा, प्रेम, कृतज्ञता, एवं परहित जैसे उच्च, उदात्त गुणों, बल, बुद्धि, शक्ति, जीवन में सब कुछ प्रभु की असीम कृपा और आशीर्वाद माने। श्रीकृष्ण और श्रीराम एक ही हैं। दोनों ही परब्रह्म हैं।

तुलसीदासजी को वृन्दावन में राम दर्शन

एक बार तुलसीदासजी प्रभुदर्शन करने के लिये वृन्दावन आये। वृन्दावन में सभी भक्त जन राधे–राधे बोलते हैं। तुलसीदासजी सोच रहे है कोई तो राम राम कहेगा। लेकिन कोई भी राम नही बोलता। जहाँ से देखो सिर्फ एक आवाज राधे-राधे। श्रीराधे-श्री राधे। यह देख तुलसीदास ने सोचा – क्या यहाँ के लोगों को रामजी से बैर है? कोई भी राम राम नहीं बोलता। यहाँ तो हर मानव, डाक, आक आदि वृक्ष भी राधे-राधे बोलते हैं। तब अपने विचारों को उन्होंने दोहों में इस प्रकार प्रकट किया –

वृन्दावन ब्रजभूमि में कहाँ राम सो बेर।
राधा राधा रटत हैं आक ढ़ाक अरु खैर॥

कुछ भक्तजन उन्हें श्रीश्यामजी का दर्शन कराने ले गये। वहाँ जब तुलसीदासजी ज्ञानगुदड़ी में विराजमान श्रीमदनमोहनजी का दर्शन कर रहे थे, तब श्रीनाभाजी एवं अनेक वैष्णव इनके साथ में थे।

उन सब ने जब श्रीमदनमोहनजी को दण्डवत प्रणाम किया तो परशुरामदास नाम के पुजारी ने इस प्रकार व्यंग्य किया –

अपने अपने इष्टको, नमन करे सब कोय।
बिना इष्ट के परशुराम नवै सो मूरख होय॥

श्रीगोस्वामीजी के मन में श्रीराम-कृष्ण में कोई भेदभाव नहीं था, परन्तु पुजारी के कटाक्ष के कारण वे

7 (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड, 104.2)

हाथ जोड़कर श्रीठाकुरजी से बोले— हे ठाकुरजी! हे रामजी! मैं जानता हूँ की आप ही राम हो आप ही कृष्ण हो, लेकिन आज आपके भक्त के मन में भेद आ गया है।

आपको राम बनने में कितनी देर लगेगी, आप राम बन जाइये —

कहा कहों छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक नवत है, धनुष बाण लो हाथ॥

ये मन की बात बिहारीजी जान गए और फिर देखिये क्या हुआ—

कित मुरली कित चन्द्रिका, कित गोपिन के साथ।
अपने जन के कारण, कृष्ण भये रघुनाथ॥

देखिये कहाँ तो कृष्णजी बांसुरी लेके खड़े होते है श्रीराधारानी गोपियों के साथ किन्तु आज भक्त की पुकार पर कृष्णजी साक्षात् रघुनाथ बन गए है। और हाथ में धनुष बाण ले लिये हुए हैं। अतः तुलसीदासजी धन्य हो गये। सब जन धन्य हो गये। सभीने तुलसीदासजी को प्रणाम किया, पुजारीजी ने राम को और तुलसीदासजी को दण्डवत् प्रणाम किया।

ईश्वर का अवतार मानव कल्याण के लिये ही होता है। अतः राम के चरित्र की प्रशंसा करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है: —

राम चरित अति अमित मुनीसा।
कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥[6]

श्रीरामचन्द्रभगवान् की जय। श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् की जय।

संदर्भ

1 वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड

2 श्री आनन्द रामायण, मनोहर काण्ड, सर्ग 18

3 श्री रामकथा एवम हनुमानकथा के अल्प ज्ञान दुर्लभ प्रसंग, लेखक नरेंद्र कुमार मेहता, मानस श्री, प्रकाशक रीना पब्लिकेशंस, उज्जैन

***

परमहंस विष्णुपुरी कृत भक्तिरत्नावली की शारदा लिपि में पाण्डुलिपि।
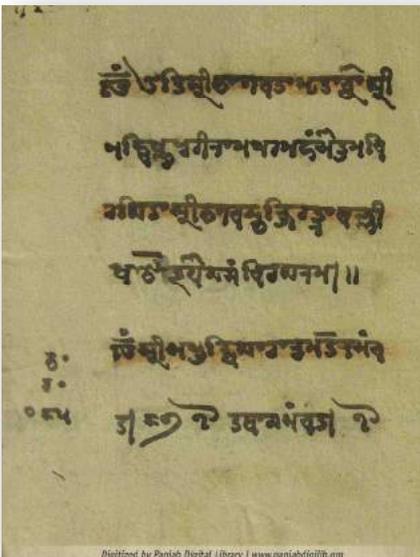
काश्मीर की शारदा लिपि में लिखित यह पाण्डुलिपि कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में 'MN-003262 के अंतर्गत संकलित है। यहाँ एक दूसरी पाण्डुलिपि भी प्राचीन देवनागरी में MN 000610 के रूप में उपलब्ध है। शारदा लिपि में एक पाण्डुलिपि कुलग्राम से तथा दूसरी उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ से भी ई-गंगोत्री संस्था को मिली है। एक अन्य शारदा की पाण्डुलिपि वीरेन्द्र काजी के संकलन में भी मिली है। ये सभी पाण्डुलिपियाँ archive.org पर शोध एवं अध्ययन हेतु पूर्णतः उफलब्ध हैं। इन पाण्डुलिपियों की उपलब्धि से काश्मीर के क्षेत्र में इस भक्तिरत्नावली ग्रन्थ के प्रचार-प्रसार की पुष्टि होती है।

आनन्द-रामायण-कथा

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।

– प्रधान सम्पादक

गतांक से क्रमशः

कलहाख्यान

इसी प्रसंगमें दशरथने मुनिसे पूछा कि मेरे कौनसे पिछले सुकृतके कारण भगवान्ने रामके रूप में मेरे यहाँ जन्म लिया और साक्षात् लक्ष्मी सीता ही मेरी पुत्र-वधू बनीं ? मुनिने बताया कि सह्याद्रिपर करवीरपुर में धर्मदत्त नामक धर्मात्मा ब्राह्मण विष्णु के लिये द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) जपा करता था। एक बार कार्तिक में रात्रि जागरण करके जब वह पूजा-सामग्रीके साथ मन्दिर में जा रहा था तब सामनेसे आती हुई राक्षसीपर सारी पूजाकी सामग्री पटककर उसने नारायणके नामके साथ उसपर तुलसी और जल फेंक-फेंककर उसे धुआँधार पीटा, जिससे उस राअसीके सारे पाप मिट गए। वह कलहा नामकी स्त्री बनकर बोली कि मैं सौराष्ट्र के भिक्षु नामक ब्राह्मणकी कलहा नामकी इतनी निष्ठुर पत्नी थी कि जो सुन्दर व्यंजन बनाती उसे पहले स्वयं चखकर तब पतिको खिलाया करती। मेरी यह कुचाल देखकर वे मुझसे जो कराना चाहते उससे उलटा कह दिया करते । पतिने एक दिन अपने मित्रको कभी न जिमानेको कहा तो मैंने झट उसे बुला जिमाया। अपने पिताकी श्राद्धतिथिपर मुझसे कहा कि मैं पिताका श्राद्ध करूँगा ही नहीं। मैंने झट ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे दिया और पतिको बहुत उलटा-सीधा जा सुनाया। इसपर उसने कहा कि अच्छा करना ही है तो बस एक ब्राह्मण जिमाना और पक्वान्न आदि कुछ मत बनाना, किन्तु मैंने अट्ठारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर ढेर-से पक्वान्न भी बना डाले । इस प्रकार उलटा कह कहकर मेरे पतिने विधिवत् श्राद्ध करा डाला। श्राद्ध करके भूलसे पतिने मुझसे कह दिया कि इन पिण्डोंको ले जाकर किसी तीर्थके जलमें डाल आओ। यह सुनते ही मैंने उन पिण्डोंको विष्ठा-कुण्डमें ले जा डाला। तभी उसने कहा

कि न तो इन्हें विष्ठा-कुण्डमेंसे निकालना न इन्हें किसी तीर्थ में डालना किन्तु मैं उन्हें वहाँसे निकालकर तीर्थके जलमें डाल आई। जब मैं कभी अपने पतिकी बात न मानकर दी तब मेरे पतिने दूसरा विवाह करनेकी ठान ली। यह सुनकर मैंने विष खाकर अपने प्राण दे डाले। धर्मराजके सम्मुख ले जाए जानेपर यमराजने कहा कि यह बगुली बनकर अपना विष्ठा खावे, शूकर-योनिमें उत्पन्न हो, बिल्ली बने, प्रेतयोनिमें जन्म ले और मरु देशमें ले जाकर छोड़ दी जाय। मैं पन्द्रह वर्ष प्रेतयोनिमें दुख भोगती हुई पड़ी रही। फिर वणिककी देह धारण करके कृष्णा-वेणीके संगमपर चली आई जहाँ विष्णुके गणोंने मुझे उस वणिक्के शरीरसे भी छुटकारा दिला दिया। तबसे मैं भूखी-प्यासी घमती हई तुम्हारे सामने चली आई और मेरे पाप दूर हो गए। अब कृपा करके भावी तीन योनियों (बगुली, सूअरी और बिल्ली)-से भी मेरी मुक्ति करा डालिए।

यह सुनकर धर्मदत्तने उससे कहा कि तुम्हारी प्रेतयोनि और तीना योनियोंका पाप दूर करनेके लिये मैं तुम्हें अपने कार्तिक-व्रतके पुण्यक आधा भाग दिए डालता हूँ। यह कहकर ज्यों ही उसने द्वादशाक्षर मन्त्रके साथ उसपर तुलसी और जल छिड़का कि वह प्रेतयोनिसे मुक्त होकर सुन्दरी बनकर विमानपर चढ़ी स्वर्ग चली गई। उस विमानपर बैठे हुए पुण्यशील और सुशीलने धर्मदत्तसे कहा कि तुम भी अपने पुण्यके कारण अपनी पत्नी-सहित बैकुण्ठ में पहुँच जाओगे। अन्तमें तुम राजा दशरथके रूपमें जन्म लोगे और दोनों स्त्रियाँ तुम्हारे साथ होंगी। यह आधे पुण्यकी भागिनी कलहा तुम्हारी कैकेयी नामकी तीसरी पत्नी होगी।

मुद्गलने दशरथसे कहा कि तुम वही धर्मदत्त ब्राह्मण हो और वे ही तीनों तुम्हारी पत्नियां हैं। वहाँसे राजा दशरथ अयोध्या लौट आए।

विवाहके पश्चात् राम बारह वर्षतक सीताके साथ अयोध्यामें निवास करते रहे । कलियुगके एक सहस्र वर्षोंका सतयुगका एक वर्ष, कलियुगके सौ वर्षोंका त्रेताका एक वर्ष और कलियुगके बारह वर्षोंका द्वापरका एक वर्ष होता है। इस प्रकार विवाहके बारह (बारह सौ) वर्षों तक अयोध्या में निवास करते हुए राम सबको सुख देते रहे ।

रामका वनवास

एक दिन बारहवें वर्षमें नारद मुनिने आकर रामको सन्देश दिया कि आप पहले रावणको मार डालिए तब आकर राज्यकी बात कीजिएगा। रामने सीतासे कहा कि पिताजी तो मेरा राज्याभिषेक करनेके फेरमें हैं पर मैं राक्षसोंको मारनेके लिये दण्डकारण्य चले जानेकी सोच रहा हूँ। तुम तबतक यहीं रहकर माता कौशल्या और पिता दशरथजीकी सेवा करती रहना। सीताने कहा-मुझे यहाँ क्यों छोड़े दे रहे हैं ? मुझे भी साथ लेते चलिए। बाल्यावस्थामें एक ब्राह्मणने कहा भी था कि तुम्हें अपने पतिके साथ वनमें रहना ही पड़ जायगा। जब आप मेरे स्वयंवरमें धनुष्पर डोरी चढ़ाने चले थे तब मैंने मनौती भी मानी थी कि यदि राम धनुष चढ़ा देंगे तो मैं चौदह वर्षतक वनमें जा रहूँगी और फिर रामायणोंमें मैंने पढ़ा भी है कि सीताके बिना राम कभी वनमें नहीं गए। रामने मुसकराकर सीताकी बात मान ली।

जब राजा दशरथने रामका अभिषेक करने की बात चलाई तब गुरु वशिष्ठने राजा दशरथ, कौशल्या और सुमित्रासे कहा-'देखो, राम तो कैकेयीके वरसे सीता और लक्ष्मणके साथ रावणका वध करनेके लिये कल ही दण्डक - वन चले जानेवाले हैं इसलिये आप अनजानसे बनकर सुमन्त्रसे कहकर राज्याभिषेककी सारी सामग्री मंगवाकर सबको निमंत्रण भेज दीजिए । आपको भी रामके विरहमें ब्राह्मण (? श्रवण मुनि)-के शापसे सीधे स्वर्ग सिधारना पड़ेगा किन्तु कौशल्याको रामका राज्याभिषेक देखनेका अवसर अवश्य मिलेगा।' रामके राज्याभिषेककी सारी तैयारी करा ली गई। वसिष्ठने रामके पास जाकर कहा कि यों तो कल तुम्हारा

राज्याभिषेक होनेवाला है किन्तु तुम्हें तो चौदह वर्षके लिये वन जाना है। वहाँ रावणका वध करके सीता और लक्ष्मणके साथ जब लौटोगे तब पाकर राज्य करते रहना। अब तुम सीताके साथ उपवास करके धरतीपर सोकर सारे नियम पालन कर डालो।

कौशल्या और सुमित्राने तो माता होनेके कारण विघ्नकी शान्तिके लिये पाठ बैठा दिए। इसी बीच दोपहर में छतपर चढ़ी हुई मन्थरा, नगरकी सजावट देखकर एक बुढ़ियासे उसका कारण जानकर दौड़ी कैकेयीके पास गुमसुम जा खड़ी हुई। पूछनेपर उसकी बात सुनकर कैकेयीने उसे एक आभूषण पुरस्कारमें निकाल थमाया। इसपर झल्लाकर सरस्वतीसे मोहित मन्थराने कैकेयीसे कहा---'तू क्या खिली पड रही है ? तेरा तो भाग्य ही फूट चला है। यदि रामको राज्य मिल गया तो तू कहींकी नहीं रह जायगी। तू कौसल्याकी दासी बनकर उनके तलवे सहलाती मर जायगी। इसलिये राजाके पास तूने जो दो वर धरोहर रख छोड़े हैं, उनमेंसे एकसे तो तू भरत के लिये राज्य मांग ले और दूसरेसे चौदह वर्षतक रामका पैदल दण्डकारण्य जाना माँग ले। अब तू झटपट कोपभवन में जा लेट।'

उसकी बात मानकर वह बाल बिखेरकर, वस्त्राभूषण इधर-उधर छितराकर कोपभवनमें धरतीपर जा पसरी। राजाने उसकी बात सुनकर एक वरसे रामको दण्डकारण्य भेजना और दूसरेसे भरतको युवराज बनाना स्वीकार तो कर लिया पर तत्काल मूच्छित हो गिरे। प्रातःकाल सुमन्त्रके पूछनेपर कैकेयीने उनसे कहा-'जाओ, रामको बुला लाओ। महाराज मिलना चाहते हैं ।' सुमन्त्रको हिचकिचाते देखकर राजा दशरथने भी धीरेसे रामको लानेका आदेश दे दिया। सूमन्त्र तत्काल रामको वहाँ लिवाते लाए । सब सुनकर रामने अपने पिताजीसे कहा कि भला इसमें शोक करनेकी कौन-सी बात है ? मैं अभी दण्डकारण्य चला जाता हूं। आप चिन्ता क्या करते हैं ? मैं अभी अपनी माताको आश्वासन देकर और सीताको समझाकर आपके चरणों में प्रणाम करके सुख से वनको चला जाता हूं।

वे अपनी माताको समझा-बुझाकर सीता और लक्ष्मणके बार-बार आग्रह करनेपर भी उन्हें और अग्निको साथ लेकर पैदल ही राजाके पास जा पहुंचे। उन्हें पैदल जाते देखकर जब पुरवासी बहुत दुखी हो चले तब वामदेव मुनिने उन्हें विस्तारसे रामके अवतारकी सारी कथा कह सुनाई जिससे सब चुप हो बैठे। रामने राजा दशरथके पास आकर उन्हें प्रणाम करके कैकेयीसे कहा कि हम लोग वन जानेके लिये आ गए हैं, आप आज्ञा दीजिए। तत्काल कैकेयीने राम, सीता और लक्ष्मणको वल्कलके वस्त्र उठा थमाए। यह देखकर वसिष्ठने उसे फटकारते हुए कहा कि तूने तो केवल रामके लिये वनवास माँगा है, फिर सीताको क्यों वल्कल वस्त्र थमाए दे रही है ? यह कहकर उन्होंने सीताके लिये बहुतसे दिव्य वस्त्र मँगवा रखवाए।

राजा दशरथकी आज्ञासे सुमन्त्र उन्हें रथपर चढ़ाकर तमसा नदीके तीरपर जा पहुँचे। अट्ठारह वर्षको अवस्थामें माघ शुक्ल पञ्चमीके दिन रामने अयोध्यासे तमसाकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ एक रात रहकर वे शृङ्गवेरपुरकी ओर चले गए जहाँ उन्होंने केवटोंके स्वामी निषादराजके पास एक रात काटी। वहीं निषादराज गुहने जो बड़का दूध लाकर दिया उसीसे उन्होंने अपनी जटाएँ बाँध सँवारी । प्रातःकाल सुमन्त्रको बिदा करके वे नौकासे गंगा पार हो गए। उस पार जाकर वहाँ एक रात रहकर उन्होंने निषादराजको लौटा दिया और वे भरद्वाजके आश्रममें जा ठहरे। वहाँसे चलकर यमुना पार करके वे महावन (चित्रकूटके पास) में वाल्मीकिके आश्रममें जा रुके और वहाँसे चित्रकूट पहुँचकर लक्ष्मणने उनके लिये जो पर्णकुटी बनाई उसी में वे सुखसे रहने लगे।

जयन्तकी दुष्टता

एक बार जब सीताकी गोद में सिर रखकर राम सोए पड़े थे तब इन्द्रका पुत्र जयन्त कौआ बनकर सीताके

पाँव और लाल अँगूठेपर बार-बार आ आकर अपने पंजे और चोंच मारने लगा किन्तु सीताने रामकी निद्रा भंग होनेके भयसे उसे नहीं उड़ाया। जागनेपर रामने उस रक्त-लगे मुखवाले कौएपर ऐसा सींकका बाण चलाया कि ब्रह्माण्ड भरमें घूम आनेपर भी कोई उसे नहीं बचा पाया। तब रामकी शरणमें लौट आनेपर नारदके कहनेसे केवल उसकी एक आँख लेकर रामने उसे छोड़ दिया।

दशरथकी मृत्यु

उधर सुमन्त्रसे सब समाचार सुनकर राजा दशरथ 'हा राम ! हा राम !' कहकर प्राण त्यागकर स्वर्ग सिधार गए। वसिष्ठने राजा दशरथके शवको तेलकी द्रोणीमें रखवाकर युधाधित्के केकय नगरसे भरत और शत्रुघ्नको बुलवा भेजा। उन दोनोंने तत्काल अयोध्या लौटकर और सारा वृत्तान्त सुनकर अपनी माता कैकेयीको बहुत धिक्कारा। भरतने सरयूके तटपर अपने पिताका अन्तिम संस्कार करके माताओंके सामने ही मन्थराकी बड़ी कुटम्मस की। सबके बहुत कहने-समझानेपर भी भरतने राज्य स्वीकार नहीं किया और मन्त्रियों, माताओं तथा पुरवासियोंके साथ रामको लौटा लानेके लिये वनको चल दिए। मार्गमें निषादराजसे सम्मानित होकर जब वे भरद्वाजके आश्रममें पधारे तब म ुनिने अपने तपोबलसे आश्रममें ही उनके सत्कारके लिये स्वर्गके सारे सुख उत्पन्न कर धरे । भरत उन्हें प्रणाम करके उनके बताए हुए मार्गसे चित्रकूट जा पहुंचे। वहाँ पर्णशालामें सीता और लक्ष्मणके साथ रामको देखकर भरतने उन्हें जा प्रणाम किया और सारा वृत्तान्त कह सूनाया। पिताकी मत्युका समाचार सुनकर रामने मन्दाकिनी में स्नान करके उन्हें तिलाञ्जलि दी और अपनी पर्णशालामें लौट आए।

रामकी पादुकाएँ लेकर भरत लौटे

भरतने वसिष्ठको साथ लेकर रामसे राज्य ग्रहण करनेके लिये बहत प्रार्थना की किन्तु रामने स्वीकार नहीं किया। इसपर भरत कुशा बिछाकर आमरण अनशन करनेपर तुल गए। रामके कहनेसे वसिष्ठने भरतको समझाया कि तुम हठ मत करो, ये तो रावण आदिका वध करने यहां आए हुए हैं। यह सुनकर भरतने रामसे कहा कि यदि यह बात है तो आप अपनी खड़ाऊं मुझे दे दीजिए, जिसकी सेवा करता हुआ मैं आपके राज्यकी रखवाली करता रहूँ। यदि चौदह वर्षकी समाप्तिके दिन सूर्यास्ततक आप नहीं लौट आए तो समझ लीजिएगा मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। रामने अपनी रत्नजटित पादुकाएँ भरतको उठा थमाई और बिदा कर दिया। वे उन पादुकाओंको सिरपर रक्खे अयोध्या लौट चले। उस समय कैकेयीने बार-बार रामसे क्षमा जा मांगी किन्तु रामने कहा कि इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। यह सब कुछ मेरी ही इच्छासे तो हुआ है।

अयोध्या लौटकर भरतने (अयोध्यासे कुछ दूर) नन्दिग्राम बना बसाया, जहाँ सिंहासनपर रामकी खड़ाऊँ रखकर, वे कन्द-मूल-फल खाकर मुनिके समान जीवन बिताने लगे।

रामने चित्रकूट भी छोड़ा

अयोध्याके नागरिक निरन्तर रामके दर्शनके लिये चित्रकूटपर आनेजाने लगे। यह देखकर राम उस पर्वतको छोड़कर लक्ष्मण और सीताके साथ अत्रिके आश्रमकी ओर चले गए। वहाँ अत्रिकी धर्मपत्नी अनसूयाने सीताको दिव्य कुण्डल, सुन्दर वस्त्र और ऐसा अंगराग दिया जो कभी मिटाए न मिट पावे। उन्होंने सीताको आशीर्वाद दिया कि तुम अपने पातिव्रत्य धर्मका निर्वाह करती हुई सकुशल अयोध्या लौट आओगी। तीन दिन वहाँ रहकर सीता और लक्ष्मणके साथ वे सुखपूर्वक एक वर्षतक वनों में घूमते रह गए।

विराध-वध

एक दिन जब राम धनुष-बाण लेकर सीता और लक्ष्मणके साथ दण्डक वनमें चले जा रहे थे तब वे देखते क्या हैं कि भयंकर राक्षस विराध मुंह बाए उनकी ओर

झपटा गरजता चला आ रहा है। रामने पहले तो उसके पैर काट डाले, फिर भी जब वह सरकता हुआ मुँह बाए बढ़ने लगा तब रामने उसका सिर भी काट गिराया। मरते ही वह सुन्दर विद्याधर बनकर कहने लगा कि दुर्वासा ऋषिके शापसे मेरी जो यह दशा हो गई थी वह आपकी कृपासे दूर हो मिटी । उसके चले जानेपर राम, सीता और लक्ष्मण शरभंग मुनिके आश्रम में एक रात्रि आ ठहरे जहाँ शरभंग अपना सारा पुण्य उन्हें समर्पण करके अग्नि में अपना शरीर भस्म करके वैकुण्ठ चले गए। वहाँसे वे सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रम में चले गए जहाँ और भी अनेक मुनि उनके दर्शनोंके लिये आ पहुँचे थे। इस प्रकार ऋषियोंके आश्रमोंमें घूमते हुए उन्होंने नौ वर्ष काट दिए । चलते-चलते वे अगस्त्य ऋषिके भाई मार्कण्डि मुनिके आश्रममें होते हुए अगस्त्य के आश्रममें जा पहुंचे। वहाँ अगस्त्यने रामको इन्द्रका दिया हुआ दिव्य धनुष, अक्षय बाणवाले दो तूणीर और एक रत्नजटित तलवार निकाल भेंट की। वहाँसे वे गौतमी (गोदावरी) के तटपर पंचवटीकी ओर चले गए जहाँ मार्गमें अरुणके पुत्र और दशरथके मित्र जटायु नामक गृध्रसे उनकी भेंट हो गई। उसे मित्र बनाकर वे पंचवटीमें तीन वर्षतक सुखसे रहते रहे।

खर-दूषण वध

उसी वनमें शूर्पणखाका पुत्र साम्ब बैठा तप किया करता था। ब्रह्माने लक्ष्मणको एक दिव्य खड्ग दे दिया था। लक्ष्मण जब उससे उस वनके सब वृक्ष और लताएँ काटे डाल रहे थे, उन्हींके साथ साम्ब भी कट गया। लक्ष्मणने आकर रामसे कहा कि यह तो ब्रह्महत्या हो गई, इसका कुछ प्रायश्चिस बताइए। रामने कहा कि वह तो साम्ब नामक राक्षस था, तपस्वी नहीं था।

साम्बका मरण सुनकर उसकी माता शूर्पणखा बड़ा मनोहर रूप बनाकर राम, लक्ष्मण और सीताको मारनेके लिये उनके पास धड़धड़ाती आ पहुँची और लगी उनका परिचय पूछने। सब सुनकर उसने रामसे कहा-आप बड़े अच्छे हैं, आप मेरे साथ विवाह कर लीजिए। रामने कहा कि मेरी स्त्री तो ये सीता हैं ही, तुम चाहो तो मेरे छोटे भाई लक्ष्मणके पास चली जाओ। जब वह लक्ष्मणके पास गई तब लक्ष्मणने उसे समझाया कि मैं तो उनका दास हूँ। मेरी स्त्री बनकर तुम क्यों दासी बननेके चक्कर में पड़ी हो। तब तो शूर्पणखा क्रोधसे लाल हो उठी और जाकर सीतापर झपट पड़ी। रामने उसे रोककर और एक बाण देकर कहा — 'लो, मेरा यह सुन्दर बाण ले जाकर लक्ष्मणको दिखा देना।' बाणको देखते ही लक्ष्मण ताड़ गए। ज्यों ही लक्ष्मणने वह राम-नाम-अंकित बाण उसपर चलाया त्यों ही उसके नाक, कान, ओठ और स्तन कटकर नीचे आ गिरे। फिर क्या था! वह रोती-चिल्लाती अपने भाई खर, दूषण और त्रिशिराके पास जा पहुंची। उसकी दशा देखते ही उन्होंने चौदह भयानक राक्षस रामसे लड़ने भेज दिए। किन्तु रामने उन चौदहोंको बातकी बातमें ढेर कर डाला। यह सुनकर तो खर, दूषण और त्रिशिरा चौदह सहस्र राक्षसोंकी सेना लेकर युद्ध करने निकल पड़े। रामने भी सीता और लक्ष्मणको एक गुफामें बैठाकर चौदह सहस्र रूप बनाकर उन सबको वहींका वहीं मार बिछाया। जिस स्थानपर खर आदि तीनों कण्टक रहते थे वह स्थान अब त्रिकण्टक या त्र्यम्बक कहलाता है।

सीता-हरण

एक दिन रामने सीतासे कहा कि तुम अपने तीन रूप बनाकर रजोरूपसे अग्नि में, सत्त्वरूपसे छाया बनकर मेरे वाम अंगमें और तमोमयी होकर रावणको मोहित करनेके लिये पंचवटीमें जा रहने लगो। सीताने स्वीकार कर लिया।

उधर शूर्पणखाने लंकामें जाकर जब रावणको बहुत धिक्कारकर उसे अपनी कुरूपताका कारण कह सुनाया तब अपनी बहिन शूर्पणखाको पूचकार-चुमकारकर रावण रथपर चढ़कर अपने मामा मारीचके पास जा पहुँचा। सारी कथा सुनकर मारीचने अपनी दशाका वर्णन करके उसे बहुत ऊँच-नीच समझाया,

किन्तु जब रावण उसे मारनेकी धमकी देने लगा तब वह स्वर्णमृग बनकर यह सोचकर पंचवटीकी ओर चल दिया कि जब मरना ही है तब रावणके हाथों मरनेके बदले रामके ही हाथों क्यों न जा मरूँ।

स्वर्णमृगको देखते ही सीताने रामसे कहा-'आइए, आइए, इस मुगको पकड़ते लाइए। मैं इसके साथ खेला करूँगी। यदि यह मारा गया तो मैं इसकी खालकी कंचुकी बना पहनूंगी।' सीताको रक्षाका भार लक्ष्मणको सौंपकर राम उस मगके पीछे लग चले। रामके बाणको चोट खाकर — मारीच चिल्लाया--'हा ! लक्ष्मण, शीघ्र आओ। मैं मारा गया। ये शब्द सुनकर जब सीताने लक्ष्मणको उधर जानेके लिये कहा तब लक्ष्मणने समझाया कि यह रामका स्वर नहीं है, आप कोई भय न कीजिए। इसपर सीताने उन्हें बहुत ऊँच-नीच कह डाला । लक्ष्मण इस जली-कटी वाणीसे व्यथित होकर बोले कि आपने जो मुझे कटु वचन कहे हैं इसका फल तो आपको भोगना पड़ेगा ही फिर भी मैं आपके चारों ओर अपने धनुषसे यह रेखा खींचे जाता हूँ। आप इसे लाँधकर बाहर मत जाइएगा। लकीर खींचकर लक्ष्मण चुप-चाप चल दिए।

उसी समय रावण भिक्षुकके रूप में सीताके पास आकर 'नारायण हरि' कहकर चुप हो गया। जैसे ही छाया सीता भिक्षा देनेके लिये चली वैसे ही वह बोला कि मैं लकीरके भीतर बँधी हुई भीख नहीं लेता। यदि गहस्थ आश्रमकी रक्षा करनी हो तो रेखासे बाहर आकर भिक्षा दे जाओ। ज्यों ही सीताने रेखाके बाहर पैर रखकर 'भिक्षा लो' कहा, त्यों ही गवण अपना भिक्षुक रूप छोड़कर सीताको अपने आठ गधोंवाले रथपर बैठाकर रथ हाँक ले चला। जटायुने उसे देखते ही अपने पंजों और चोंचसे उसका रथ चूर-चूर कर डाला, आठों गधोंकी आंतें खींच निकाली, उसका धनुष दो टूक कर डाला, उसके मुकुट काट डाले और उसका सारा शरीर लह-लुहान कर डाला। रावणको मूच्छित करके जब सीताको जटायु ले जाने लगा तभी रावणने भी खड़े होकर तलवार खींचकर उसपर ऐसा वार किया कि जटायु घायल होकर धरतीपर आ गिरा।

फिर सीताको लेकर रावण आकाश-मार्गसे लंकाकी ओर उड़ चला। सीता 'हा राम ! हा राम !' चिल्लाती रह गईं। इतने में पर्वतपर बैठे हुए पाँच वानरों (सुग्रीव, हनुमान आदि)-को देखते ही उन्होंने अपनी साड़ीके पल्ले में कुछ गहने बाँधकर ऊपरसे फेंक गिराए।

रावणने सीताको अपने अशोक-वन में ले जा रक्खा। वहाँ उसने सीताको वशमें करने के बड़े प्रलोभन दिए पर सीताने उसकी ओर ताकातक नहीं। तब उनकी देख-रेखके लिये रावणने वहाँ सहस्रों राक्षसियाँ रख छोड़ी। उसी समय ब्रह्माके कहनेसे इन्द्रने वर्षभरतक भूख-प्यास मिटा देनेवाली खीर सीताके आगे ला धरी। सीताने उसमें से कुछ खीर तो राम और लक्ष्मणके लिये और कुछ देवताओं तथा अतिथियों के लिये निकाल धरी, कुछ गौ तथा पक्षियों को निकाल खिलाई और थोड़ी-सी त्रिजटाको देकर शेष स्वयं खा ली।

सूनी कुटिया

मृगको मारकर लौटते हुए जब रामने लक्ष्मणको आते हुए देखा तब पूछनेपर लक्ष्मणने सारी कथा कह सुनाई। पंचवटी पहुँचनेपर जब उन्हें सीता कहीं नहीं दिखाई दी तब तो वे व्याकुल होकर सीताको ढूंढते फिरने लगे। मार्गमें पड़े हुए मुमूर्षु जटायुके मुंहसे उन्होंने सुना कि सीताको रावण हर ले गया है। जटायुका अग्नि-संस्कार करके सीताको खोजते हुए वे पश्चिमकी ओर चल दिए और मार्गभर कुशकी सीता बनाकर उसीके साथ अग्निहोत्र करते रहे।

पार्वतीने शिवसे पूछा— आप तो रामको परब्रह्म बता रहे थे, फिर वे साधारण पुरुषके समान रोते-कलपते क्यों फिर रहे थे? उन्होंने बताया कि रामने अपने इस आचरणसे सबको यही शिक्षा दा कि किसीको स्त्रीमें आसक्त नहीं होना चाहिए। दक्षिण दिशाकी ओर जाते समय राम-लक्ष्मणको चार कोस (13 किलोमीटर) लम्बे हाथ और बिना सिरवाले कबन्धने जकड़ पकड़ा। राम और

शेषांश ....पर

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार (दिसम्बर, 2021ई.)

महावीर मन्दिर में संगीतमय द्विदिवसीय श्री सीताराम विवाह उत्सव— दिनांक 8-9 दिसम्बर, 2021 ई.

विवाह पंचमी के शुभ अवसर पर महावीर मन्दिर में श्री सीताराम विवाह उत्सव झांकी की संगीतमय प्रस्तुति हुई। जनकपुर धाम से आयी आदर्श सीताराम विवाह महोत्सव मंडली के कलाकारों ने जनकपुर की फुलवारी में श्रीराम-सीता मिलन से प्रारंभ कर सिन्दुर दान तक संपूर्ण वैवाहिक विधियों की संगीतमय प्रस्तुति की। मंडप परिक्रमा, अठोंगर, नहछू, कन्यादान प्रसंगों के विवाह गीतों की प्रस्तुति से महावीर मन्दिर के प्रांगण में श्रीराम जानकी विवाह उत्सव के साक्षी बने भक्तों का समूह भावविभोर हो गया। राम की भूमिका 11 वर्षीय अभिषेक ने निभाई जबकि जानकी की भूमिका में 8 साल के सक्षम थे। गणेश चंद्र ठाकुर और सरोधन चौधरी ने मिथिला परंपरा के विवाह गीतों की बहुत सुन्दर प्रस्तुति की। नाल पर रतन यादव, तबला पर देवेन्द्र कुमार निराला, पैड पर राम प्रसाद ठाकुर ने बखूबी साथ दिया। सह कलाकारों में श्रीधर, शिवचंद्र चौधरी, राम पदारथ शर्मा, रेणु कुमारी और रमता मिश्रा शामिल रहे। संयोजन विपिन कुमार ठाकुर ने किया। देर शाम तक चले कार्यक्रम की झलक पाने के लिए महावीर मन्दिर प्रांगण में महिलाएं, बच्चे समेत बड़ी संख्या में भक्त उमड़ पड़े।

श्रीराम-जानकी विवाह के दूसरे दिन श्रीराम कलेबा का भक्तिमय आयोजन किया गया। विवाह पंचमी को श्रीराम जानकी विवाह उत्सव के बाद गुरुवार को बारी थी श्रीराम कलेबा की। इस आदर्श सीताराम विवाह महोत्सव मंडली के कलाकारों ने परंपरागत विवाह गीतों की संगीतमय प्रस्तुति से समा बांध दिया। विदाई का झांकी दृश्य देखकर महावीर मन्दिर के प्रांगण में उपस्थित भक्तों की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। झांकी के समापन के बाद वहां उपस्थित भक्तों के बीच प्रसाद वितरित किया गया। श्रीसीताराम विवाह कार्यक्रम प्रस्तुत करनेवाली यह कलाकार-मंडली मिथिला की पारम्परिक शैली में विवाह के कार्यक्रम प्रस्तुत करती है। इस कार्यक्रम में भक्ति, उल्लास एवं संगीत का समिश्रण देखने लायक होता है। महावीर मन्दिर में श्रीराम जानकी विवाह उत्सव का यह दो दिवसीय कार्यक्रम पिछले 25 वर्षों से अनवरत जारी है।

महावीर मन्दिर द्वारा अयोध्या में राम-मन्दिर के निर्माण हेतु दूसरी किस्त दो करोड़ रुपये का चेक समर्पित किया गया— दिनांक 11 दिसम्बर, 2021ई.

9 नवम्बर, 2019ई. को अयोध्या में श्री रामजन्मभूमि स्थान पर राममन्दिर निर्माण के पक्ष में माननीय उच्चतम न्यायालय के फैसला आने के दिन महावीर मन्दिर, पटना के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने अयोध्या में राममन्दिर के निर्माण हेतु 10 करोड़ रुपये देने की घोषणा की थी। इसके अन्तर्गत पिछले वर्ष पहली किस्त के रूप में दो करोड़ रुपये का चेक प्रदान किया गया था। इस वर्ष भी दिनांक 11 दिसम्बर, 2021ई. को महावीर मन्दिर के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने अयोध्या में श्री रामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र के सचिव चंपत रायजी को यह चेक समर्पित किया। इस अवसर पर श्री रामजन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र के दो न्यासी श्री अनिल मिश्रा था श्री धनुषवीर सिंह भी उपस्थित थे। आचार्य किशोर कुणाल ने रामजन्मभूमि के लिए उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय तक प्रमाण जुटाने में महती भूमिका भी निभायी थी। लगभग 1600 पृष्ठों में इन प्रमाणों का संग्रह उन्होंने अपनी दो पुस्तकों में प्रकाशित भी कराया है।

महावीर मन्दिर में गीता-जयन्ती का कार्यक्रम दिनांक 14 दिसम्बर, 2021ई.

अग्रहायण शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि को विगत वर्षों की भांति महावीर मन्दिर के ऊपरी तल्ले पर संध्या काल में गीता जयंती का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आचार्य किशोर कुणाल ने कहा कि अग्रहण शुक्ल

पक्ष की एकादशी तिथि को भगवान श्री कृष्ण ने कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर अपने सखा और महारथी योद्धा अर्जुन को गीता के उपदेश दिए थे। उसी दिन से महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ था। इसी तिथि गीता जयंती मनाई जाती है। महावीर मन्दिर के प्रथम तल पर श्रीकृष्ण-अर्जुन के विग्रह में भी भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता के उपदेश देते दर्शाया गया है। अपने संबोधन में आचार्य किशोर कुणाल ने कहा कि भगवान श्रीकृष्ण ने मानव जीवन दर्शन को को केंद्र में रखकर गीता के उपदेश दिए थे। इसमें कर्म भक्ति और ज्ञान तीनों का समन्वय है। कार्यक्रम के आरम्भ में गीता के 11वें अध्याय का पाठ पंडित रामदेव पांडेय ने किया। इस अवसर पर पंडित सौरभ पाण्डेय, पंडित गजानन जोशी, घनश्याम दास हंस आदि वक्ताओं ने गीता पर अपने विचार रखे।

महावीर मन्दिर की ओर से आम पाठकों को आसानी से पढ़ने-समझने के लिए नये कलेवर में गीता का प्रकाशन किया जाएगा। इस पुस्तक में गीता के मूल श्लोकों के अलावा पदच्छेद, शब्दार्थ, पद्य अनुवाद और शब्द अनुक्रमणिका आदि का समावेश होगा। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने मंगलवार को गीता जयंती के अवसर पर यह घोषणा की।

पंडित भवनाथ झा ने अपने संबोधन में कहा कि गीता प्रत्येक मनुष्य का मार्ग दर्शन करनेवाला ग्रन्थ है॥ इसमें सामाजिक समरसता का सिद्धान्त यह है कि यहाँ कर्म के आधार पर जाति का निर्धारण किया गया है, न कि जन्म के आधार पर। यह प्रत्येक मानव के लिए पठनीय ग्रन्थ है। अन्य सभी धर्मों के अपने अपने धर्मग्रन्थ हैं, किन्तु गीता सबके लिए है। सम्पूर्ण विश्व के मानव के लिए वह पठनीय है, मननीय है।

***

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी कृत "आनन्द-रामायण-कथा" का शेषांश

लक्ष्मणने झट उसके हाथ काट डाले और वह दिव्य रूप धारण करके रामसे बोला कि मैं गन्धर्वोका राजा था। ब्रह्माके वरदानसे मुझे कोई मार नहीं सकता था। इस अभिमानसे एक दिन जब मैं अष्टावक्रके रूपपर हँस दिया तब उन्होंने मुझे राक्षस होनेका शाप दे डाला। मेरे बहत रोने-गिड़गिड़ानेपर उन्होंने कहा-अच्छा, जब त्रेतायुगमें रामलक्ष्मण तेरे हाथ काट डालेंगे तब तू मुक्त हो जायगा। मैंने एक दिन जो इन्द्रपर धावा किया तो उन्होंने ऐसा वज्र मारा कि मेरे सिर और पाँव दोनों पेटमें जा धंसे किन्तु ब्रह्माके वरदानसे मैं मर नहीं पाया। बहुत प्रार्थना करनेपर उन्होंने कहा — जा, तेरी छातीमें ही मुख हो जायगा और चार-चार कोस लम्बे तेरे हाथ हो जायेंगे। अब आप मतंग मुनिके आश्रममें शबरीसे जा मिलिए। वहाँ जानेपर शबरीने उनका बड़ सत्कार किया और चितारोहण करते समय रामसे कहा कि आगे ऋष्यमूक पर्वतपर मन्त्रियों-सहित सुग्रीव रहता है। आप उससे मित्रता जा करेंगे तो सीताकी खोजमें बहुत सहायता मिल जायगी। आप पम्पा सरोवरसे होते हए सुग्रीवके पास चले जाइए। यह कहकर शबरी तो रामको प्रणाम करके अग्निमें प्रवेश करके वैकुण्ठ पहुँच गई और राम भी पम्पा सरोवरपर स्नान और जलपान करके ऋष्यमूक पर्वतकी ओर चल दिए।

क्रमशः जारी

व्रत-पर्व

पौष, 2078 वि. सं. ((20 दिसम्बर, 2021ई. से 17 जनवरी, 2022ई. तक)

1. **सफला एकादशी, 30 दिसम्बर, 2021ई. गुरुवार**

इस दिन फल भोग लगाकर एकादशी व्रत करने का विधान है। फल के साथ होने के कारण इसे सफला कहा गया है। सफला एकादशी की कथा में कहा गया है कि इस दिन व्रत कर पीपल वृक्ष के नीचे विष्णु के नाम से फल अर्पित करना चाहिए।

2. **दशतारकारम्भ, 1 जनवरी 2022 ई. शनिवार**

इस दिन से 11 जनवरी तक के दिनों को दशतारक कहा गया है। इन दिनों वर्षा, गरज, आँधी, ओला गिरना, बिजली का चमकना आदि लक्षण दीखने से अगले वर्ष बरसात में अच्छी वर्षा की भविष्यवाणी की जाती है। विशेष के लिए इसी अंक में दशतारक पर विवेचन देखें।

3. **पौषी अमावस्या, दिनांक 02 जनवरी 2022ई. रविवार**

5. **गुरु गोविन्द सिंह जयन्ती, 9 जनवरी 2022ई. रविवार**

6. **दशतारकान्त, 11 जनवरी 2022 ई. मंगलवार**

दशतारकारम्भ में देखें।

7. **कर्मदशमी, विश्वकर्मा-जयन्ती, 12 जनवरी 2022ई. गुरुवार**

भारत में सामान्य रूप से विश्वकर्मा पूजा 17 सितम्बर को मान लिया गया है, किन्तु शास्त्रीय रूप में इस दिन पौष शुक्ल दशमी को कर्मदशमी के दिन विश्वकर्मा का अवतरण माना जाता है। इस दिन विश्वकर्मा-पूजा की तरह ही पूजा करनी चाहिए।

8. **पुत्रदा एकादशी, 13 जनवरी 2022ई. शुक्रवार**

पौष शुक्ल एकादशी का नाम पुत्रदा एकादशी है। इस दिन व्रत करने से सन्तान की प्राप्ति होना कहा गया है। ध्यान रहे कि संस्कृत में पुत्र शब्द का व्यवहार सामान्य लिंग अर्थात् पुत्र एवं पुत्री दोनों के लिए किया जाता है।

9. **नारायण द्वादशी, 14 जनवरी, 2022ई. शनिवार**

पौष मास की यह द्वादशी तिथि बहुत महत्त्वपूर्ण है। एकादशी का व्रत कर प्रातःकाल में यह पूजा की जाती है, जिसके बाद एकादशी की पारणा होती है।

10. **मकरसंक्रान्ति, 15 जनवरी 2022ई. शनिवार**

इस वर्ष 12:00 के बाद पुण्यकाल आरम्भ हो रहा है। इस दिन प्रातःस्नान कर तिल, तिल से बने पदार्थ तथा दही का भोजन करना चाहिए। तिल दान करने का भी विधान है। मिथिला में खिचड़ी, जही, तिलबा, चूड़ालाई, मूढ़ीलाई तथा मगध में चूड़ा, दही, शक्कर की चूरण भूरा, तिलकूटआदि खाने की परम्परा है।

10. **शाकम्भरी जयन्ती, पौषी पूर्णिमा, व्रत एवं स्नान-दान, लक्ष्मण संवत् 913 का प्रारम्भ आदि, 17 जनवरी, 2022ई., सोमवार**

पौष मास की पूर्णिमा तिथि में पवित्र नदियों में प्रातःस्नान का विशेष महत्त्व है। देवी की उपासना की परम्परा में अकाल के समय शाक से लोगों का भरण-पोषण करनेवाली शाकम्भरी देवी की उत्पत्ति इसी दिन हुई थी। दुर्गासप्तशती में इनकी कथा दी गयी है। बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन ने इस संवत् का प्रारम्भ किया था। मिथिला क्षेत्र में 16वीं शती तक इसी संवत् का प्रचलन था।

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– **'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय'** इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। **'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान'** प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय **राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम**, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें॥

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को श्रीसीताराम विवाह के अवसर पर रंगमंचीय कार्यक्रम

मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को श्रीसीताराम विवाह के अवसर पर

पत्रिका पंजीयन सं. 52257/90

महावीर मन्दिर, पटना के द्वारा अयोध्या में श्रीरामजन्मभूमि के निकट अमावा मन्दिर के प्रांगण में संचालित राम रसोई में प्रसाद ग्रहण करते श्रद्धालु

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए वीर बहादुर सिंह, महावीर मन्दिर, पटना-800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna.org/dharmayan/ पर नि:शुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा